वर्ष पहला । श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली । खण्ड चौथा।

श्री

स्वामी रामतीर्थ ।

उनके सदुपदेश—भाग ४ ।

प्रकाशकः,

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण } —:※:— { अगष्ट १९२०
प्रति २००० } { श्रावण १९७७

वार्षिक मूल्य के हिसाब से

सादी ।—) } डाक व्यय सहित { सजिल्द ॥)

फुटकरः

सादी ॥) } डाक व्यय अलग { सजिल्द ॥।)

[वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित सादी २॥) सजिल्द ४)]

विषयानुक्रम ।

विषय	पृष्ठ
निवेदन	...
भूमिका	१
पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध ।	२३
पाप के पूर्वलक्षण और निदान	५२
नक़द धर्म	६८
विश्वास या ईमान	१०
पत्र मञ्जूषा	११६

———:*:———

PRINTED BY K. C. BANERJEE AT THE ANGLO-ORIENTAL PRESS.

LUCKNOW.

and

Published by Swami N S. Swayam Jyoti,

Secretary.

The Rama Tirtha Publication League ; Lucknow.

1920.

स्वामी रामतीर्थ;

उनके सदुपदेश---भाग १, २, ३, ४ ।

प्रत्येक भागः—मूल्य की सादी ॥) सजिल्द ॥।)
डाक व्यय तथा वी. पी. अलग ।

इन उपदेशों के संग्रह में ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के अंगरेजी तथा उर्दू भाषा में दिये हुए प्रभावशाली व्याख्यानों, उनके लिखे हुए चेतनात्मक लेखों, प्रोत्साहक भजनों तथा उनके आदर्शरूप जीवन चरित क्रमशः प्रकाशित होता है । आज पर्यन्त चार भाग छप चुके हैं ।

भाग पहलाः—विषयानुक्रम (१) आनन्द । (२) आत्म विकास । (३) उपासना । (४) वार्तालाप ।

भाग दूसराः—विषयानुक्रम (१) जीवनचरित । (२) सान्त में अनन्त । (३) आत्मसूर्य और माया । (४) ईश्वर-भक्ति । (५) व्यावहारिक वेदान्त । (६) पत्रमञ्जूषा । (७) माया ।

भाग तीसराः—विषयानुक्रम (१) रामपरिचय । (२) वास्तविक आत्मा । (३) धर्म-तत्त्व । (४) ब्रह्मचर्य । (५) अकबर-दिल्ली । (६) भारत वर्ष की वर्त्तमान आवश्यकतायें । (७) हिमालय । (८) सुमेरु दर्शन । (९) भारतवर्ष की स्त्रियां । (१०) आर्य माता । (११) पत्र मञ्जूषा ।

भाग चौथाः—विषयानुक्रम (१) भूमिका । (२) पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध । (३) पाप के पूर्वलक्षण और निदान । (४) नक़द धर्म । (५) विश्वास या ईमान । (६) पत्र मञ्जूषा ।

☞ प्रत्येक भाग में १२८ पृष्ठ और स्वामी जी का चित्र है ।

ब्रह्मचर्य ।

भारत वर्ष में दिया हुआ स्वामी रामतीर्थ जी का यह व्याख्यान एक छोटी सी पुस्तिका के आकार में छपवाया है और इस अमूल्य और परमहितकारक उपदेश के अंक को जनता के कल्याण के लिये आध आना टिकिट भेजने पर विना मूल्य ही सब की सेवा में भेजा जाता है। पाठशालाओं में, विद्यार्थियों के आश्रमों में और ऐसे ही योग्य अधिकारियों में वितरण करने के सदुपयोग के हेतु, जो कोई माँगे मँगावे उनकी सेवा में डाकव्यय के लिये पोस्टेज भेज देने पर आवश्यकतानुसार प्रतियां भेज दी जायंगी।

स्वामी रामतीर्थ जी के चित्र ।

रामभक्तों की अनुकूलता के हेतु स्वामी जी के दर्शनीय चित्र, जो इन पुस्तकों में दिये जाते हैं, उनकी प्रतियां अलग बेचने का प्रबन्ध किया है।

प्रत्येक प्रति का मूल्य -)— दस प्रति का मूल्य ॥)

बटन फोटो ।

स्वामी जी की परमहंस दशा के सुन्दर चित्र का रुपये की साइज़ का यह एक मनोहर गोलाकार बटन है, जो पहने हुए वस्त्र में लगा कर उनके दर्शनीय स्वरूप का प्रत्येक क्षण आनन्द ले सकते हैं। राम के भक्तों के लिये यह एक अनोखी वस्तु है। शीघ्र मंगा लीजिये।

मूल्य ॥) डाक व्यय अलग।

मैनेजर

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग,

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।

☞ रामप्रेमियों से प्रार्थना है कि इस भाग के निवेदन को पढ़कर इन उपदेशों के प्रचार करने में शक्ति और श्रद्धापूर्वक शीघ्र हमारे सहकारी बनें।

मंत्री।

निवेदन ।

सन्तोष की बात है कि चौथा भाग प्रकाशित करने में विलम्ब नहीं हुआ । पर इतना ही यथेष्ट नहीं है । हम चाहते थे कि दीपमालिका तक आठों भाग प्रकाशित हो जांय किंतु यह होते नहीं दिखाई पड़ता । लाख चेष्टा करने पर भी इस उद्योग में हम शायद सफल न होंगे । हमारा इसमें अधिक अपराध नहीं । प्रेस की शिथिलता को हम क्या कर सकते हैं ? लीग को इतना धन बल नहीं कि अपना प्रेस खड़ा कर दे । लाचारी है । राम के प्रेमियों को, जहां तक यथासमय प्रकाशन का सम्बन्ध है, बहुधा हमारी अभिलाषा से ही अपने मन को समझाना होगा ।

इस भाग में हमें विवश होकर दूसरा कागज लगाना पड़ा है । पिछले भागों में कागज की सी चिकनाहट इसमें नहीं है । चिकना कागज मिला ही नहीं । परन्तु यह कागज कुछ सस्ता मिला हो ऐसी बात नहीं है । मूल्य प्रायः डेवढ़ा देना पड़ा है । कागज का अभाव और मूल्य इस समय बड़े बड़े प्रकाशकों को चिन्ता में डाल रहा है, हमारी तो बात ही क्या है । इस महँगी के कारण ही हमें सखेद अपने कार्य-क्रम में एक बड़ा भारी परिवर्त्तन करना पड़ा है । पाठक इसको स्वयं पढ़े और अपने इष्ट मित्रों तथा राम भक्तों को भी

अवश्य पढ़ावें ।

गत भाग के निवेदन में हम इसका संकेत कर चुके हैं । परन्तु रामभक्तों की जानकारी और पर्याप्त प्रचार के लिये

इस बार हम अपने निश्चय को स्पष्ट रूप से कहना चाहते हैं। महँगी के कारण २॥) और ४) रु० में १००० पृष्ट के आठ भाग देना असम्भव हो गया है। अतएव आगामी दीवाली के बाद स्थायी ग्राहक वर्त्तमान मूल्य पर न बनाये जायँगे। आगामी दीवाली तक जो सज्जन स्थायी ग्राहकों की श्रेणी में अपना नाम लिखायेंगे उन्हें प्रथम ८ भाग अवश्य वर्त्तमान वार्षिक मूल्य पर दिये जायंगे। परन्तु बाद फुटकर या बढ़े हुए मूल्य पर बिक्री की जायगी। इसमें सन्देह नहीं कि, अब एक क्षण भी और वर्तमान नियम अनुसार स्थायी ग्राहक बनाना आर्थिक दृष्टि से लीग के लिये बहुत ही हानिकर है। किन्तु लीग के रूप में संगठित रामभक्त हानि सह कर भी एक वर्ष तक अपने नियम का पालन करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यह संस्था यदि व्यापारिक होती तो ऐसा करना असम्भव था। परन्तु यहां तो बात ही कुछ और है। प्यारे राम के उपदेशों के प्रचार के लिये व्यग्र पुरुषों को आर्थिक लाभ हानि सहज ही नहीं विचलित कर सकती। साथ ही यह भी सहज ही अनुमान करने योग्य है कि बराबर घाटा उठा कर भी लीग अपने कार्य को नहीं जारी रख सकती। यदि धन का संकोच या अभाव न होता तो दूसरे वर्ष भी इसी मूल्य पर स्थायी ग्राहक बना कर लीग धन्य होती। परन्तु यह शक्ति इस समय तो हम में नहीं है। हमें निश्चय है कि राम के प्रेमी लीग की कठिनाइयों का अनुभव करते हुए इस निर्णय के लिये लीग को क्षमा करेंगे।

इस निर्णय का संपूर्ण दोष महँगी के मत्थे ही नहीं मढ़ा जा सकता। हिन्दीभाषी रामभक्त भी

सर्वथा निर्दोष नहीं।

यदि स्थायी ग्राहकों की यथेष्ट संख्या अब तक हो गई होती तो शायद हमें यह निश्चय न करना पड़ता। रामभक्त

बहुत ही शीघ्र अच्छी संख्या में स्थायी ग्राहक बन कर सौंग का उत्साह बढ़ावेंगे और इस पवित्र कार्य में सहायक होंगे. यह आशा थी। इसी भरोसे और बल पर तीन हजार प्रतियां निकालने का प्रबन्ध किया था। परन्तु आपको सुनकर दुःख होगा कि अभी तक

एक हजार भी

स्थायी ग्राहक नहीं हैं। इस दशा में कितनी हानि हो रही है, यह आप भलीभांति समझ सकते हैं। मूल्य बढ़ाने के निश्चय में इस कारण का भी भाग सामान्य नहीं है। जो हुआ सो हुआ। गत के लिये शोच करना वृथा है। आगे क्या किया जा सकता है, यही सोचना चाहिये। आगामी दीवाली तक स्थायी ग्राहकों की यथेष्ट संख्या हो जाने पर संभव है कि हम मूल्य बढ़ाने को विवश न हों और इसी मूल्य पर आगामी वर्ष भी स्थायी ग्राहक बना सकेंगे। इसी से कहते हैं,

अभी भी अवसर

है। रामभक्तो चेतो! यथाशक्ति सस्ते मूल्य पर राम के उपदेशों का हिन्दी संसार में प्रचार करने के प्रयत्न में सहायक बनो। लोक और परलोक दोनों बनाने का यह अत्युत्तम साधन है। राम का उपदेशामृत पीनेवाले भारत की दशा सुधारने में कितना कुछ वास्तविक कार्य सकते हैं, यह कौन नहीं समझ सकता? सप्रेम ॐ तत्सत्

स्वामी स्वयं ज्योति,

मंत्री।

श्री स्वामी रामतीर्थ



अमेरिका—सन् १९०३।

भूमिका ।

(अंगरेजी पुस्तकों में लिखा हुआ श्रीयुत् पूर्णसिंह जी का लेख ।)

स्वामी राम के नाम और याद में यह ग्रन्थावली जन-साधारण को भेंट की जाती है। इसमें उनके सब लेखों और व्याख्यानों को एकत्र करने का विचार है। उनके लेखों और व्याख्यानों का एक छोटा सा अंगरेजी संग्रह उनके जीवन-काल में ही मद्रास की गणेश ऐण्ड कम्पनी ने प्रकाशित किया था। इनके सिवाय, अन्य हस्त-लेख, जिनमें अधिकांश कुछ अमेरिकन मित्रों की लिखी हुई उनके अमेरिका के व्याख्यानों की टिप्पनियां थीं, उनका अन्त होने पर उनकी पेटी में मिले थे। उनके जीवन में प्रकाशित लेखों को छोड़ कर, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, जो इस संग्रह में भी सम्मिलित हैं, दूसरों को उनकी पुनरावृत्ति का लाभ नहीं प्राप्त हुआ है। अतएव बहुत कुछ इनमें वे बातें हैं, जिन्हें वे शायद निकाल डालते, और बहुतेरी ऐसी बातों का अभाव है, जो शायद वे बढ़ा देते। इनको बिलकुल नये सांचे में ढाल कर इन हस्त-लेखों के विषयों के महत्त्वपूर्ण अंशों को वास्तव में नये सिरे से लिखा करते थे और बहुत कुछ नवीन जोड़ कर, जो उनके मनमें था, वे इन्हें अपने उपदेशों की क्रमबद्ध व्याख्या बना देना चाहते थे। ऐसा संशोधित और परिमार्जित ग्रन्थ अवश्य ही वेदान्त दर्शन पर एक नवीन और अद्भुत ग्रन्थ होता, जिससे वेदान्त और भावी सन्तानों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक धर्म की उन्नति

होती। किन्तु मुख्यतः दो कारणों से उनकी इच्छा अपूर्ण रह गई। एक तो, अपने प्रस्तावित ग्रन्थ की तैयारी के लिये, देह त्यागने के प्रायः दो वर्ष पूर्व मूल वेदों का सर्वांगपूर्ण अध्ययन उन्होंने गम्भीरता और उत्सुकता पूर्वक प्रारम्भ किया था। और इस प्रकार वह, जो समय अपने लेखों को व्यवस्थित करने में खर्च करके वे बड़ा उपकार कर सकते थे, अन्तिम कृति को महान् और स्मरणीय बनाने के प्रयत्न में लगा। दूसरे, जनता के संसर्ग से दूर, हिमालय के एकान्त-वास से, जो उन्हें प्रिय था, अनन्त में उनकी लीनता नित्य प्रति बढ़ती गई, और क्रमशः ऊँची उड़ानें भरते हुए उनके मन के पैर उखड़ गये। जनसमागम बना रहने पर सम्भव था कि, लोक की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उनकी बुद्धि उत्तेजित होती। इन पंक्तियों का लेखक जब अन्तिम बार उनके साथ था, वे अधिकतर चुप रहते थे। लिखने और पढ़ने में उन्हें रुचि नहीं रह गई थी। प्रश्न करने पर वे अपनी ज्ञानावस्था के, अपनी परम मौनता के, जिसे वे उस समय जीवन में मृत्यु (जीवन मुक्ति) के नाम से पुकारते थे, रहस्य हमें समझाते थे। वे हम लोगों से कहते थे कि, "जितना ही अधिक कोई जीवन में मरता है, दूसरों के लाभ के लिये उतनी ही अधिक भलाई स्वभावतः और अनायास उससे निकलती है। हाथ में लिया हुआ काम मुझसे पूरा होता न जान पड़ता हो परन्तु मैं जानता हूँ कि, मेरे चले जाने पर वह किसी समय अवश्य होगा और अधिक अच्छी तरह होगा। जो विचार मेरे मन में भरे हुए हैं और मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक रहे हैं, वे धीरे २ करके काल पाकर समाज में व्याप जायँगे, और तभी उनके (समाज के लोगों के) प्रारब्धों को ठीक फलीभूत कर सकेंगे,

जब मैं इस समय सब मनसूबों, इच्छाओं और उद्देश्यों को त्याग कर परमात्मा में अपने को लीन कर दूँगा "।

यह विचार उनमें ऐसा बद्धमूल होगया था कि लाख प्रार्थनायें भी उन्हें लिखने में न लगा सकीं।

इस प्रकार हम उनकी शिक्षाओं की उन्हीं की लिखी हुई नियमित व्याख्या से वंचित हैं। परन्तु यह संतोष की बात है कि उनके विचार की कुछ सामग्री हमें प्राप्त है, वह कितनी ही बिखरी हुई और टूटे फूटे अंशों में क्यों न हो। अतएव कुछ संकल्प विकल्प के बाद निश्चय किया गया है कि, उनके विचार की इस सामग्री और उनके अचिन्तित व्याख्यानों में प्रकट होने वाले उनके ज्ञान के प्रतिबिम्बों को, उनके निबन्धों और स्मरण पुस्तिकाओं (note books) के सहित, प्रायः उसी रूप में छाप कर सर्वसाधारण के सामने रख दिया जाय, जिसमें वे छोड़ गये हैं। जो राम से मिले हैं वे बहुतेरे और कदाचित् सब व्याख्यानों में उन्हें पहचान लेंगे और बोध करेंगे कि उनके विलक्षण ओजस्वी ढंग को अब भी सुन रहे हैं। वे उनके व्यक्तित्व की मोहनी से एक बार फिर अपने को सम्मोहित समझेंगे, और छपे रूप की जितनी कमी पूर्ति वे उनके सम्बन्ध के अपने मतों के प्रेममय और सन्मानपूर्ण संस्कारों से कर लेंगे। जिन्हें उनके दर्शन का अवसर नहीं मिला था वे यदि धीरज धरकर आदि से अन्त तक पढ़ जायँगे तो उस परमानन्दमय ज्ञानावस्था का अनुभव कर सकेंगे, जो इन कथनों की आधार है, और इनको मनोहर तथा अर्थपूर्ण बनाती है। किसी स्थल पर सम्भव है वे उनके विचारों को न समझ सकें। परन्तु दूसरे स्थल पर उन्हीं विचारों को वे कहीं अधिक स्पष्टता

और प्रबलता से प्रकट किया हुआ पावेंगे । विभिन्न विचारों और सम्मतियों के लोगों को, इन पन्नों के पढ़ जाने पर, अपनी बुद्धि और जीवात्मा के भोजन के लिये यथेष्ट सामग्री प्राप्त होगी, और निस्सन्देह बहुत कुछ को तो ये अपनी ही वस्तु समझेंगे ।

इन भागों में वे हमारे सामने साहित्य के मनुष्य के रूप में नहीं प्रकट होते और उनकी ज़रा सी भी इच्छा नहीं है कि ग्रंथकार मानकर उनकी आलोचना की जाय । किन्तु वे हमारे सामने जीवन के आध्यात्मिक नियमों के उपदेशक की महिमा से युक्त होकर आते हैं । उनकी वाग्मिता का एक बड़ा भारी लक्षण यह है कि वे अपने हृदय की सच्ची बात हमसे कहते हैं और व्याख्यानदाताओं की तरह वेदान्त के सिद्धान्तों को हमारे सामने सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते। यह बात नहीं है कि, उनमें यह शक्ति नहीं थी । उनके जानने-वाले जानते हैं कि वे अपने विषय के पूर्ण ज्ञाता हैं । किन्तु कारण यह है कि, वे केवल उन्हीं विचारों को हमारे सामने रखने की चेष्टा कर रहे हैं, जिनको वे अपने जीवन में व्यव-हार में लाये थे और जिनका अनुगमन, वे समझते हैं, दूसरों को भी उसी तरह मनुष्य-जीवन के गौरव, आनन्द और सफलता के सर्वोच्च शिखर पर ले जायगा, जिस तरह उन्हें लेगया था । अतएव वे अपना बुद्धि-वैभव हमें नहीं दिखलाते, परन्तु अपने कुछ अनुभव हमें बतलाना चाहते हैं । और किन्हीं विचारों पर अमल करने से जीवन में प्राप्त होनेवाले परिणामों की प्रेरणा से वे उत्साह के साथ साफ २ बोलते हैं । इस प्रकार उनके ये व्याख्यान उस सत्य को अनु-भव करने में सहायक और संकेत मात्र हैं, जिसमें उनका

विश्वास था, न कि उस सत्य की दार्शनिक और ठोस युक्तियों से पूर्ण व्याख्यायें। बुद्धि-वैभव के भार से दबे हुए ग्रन्थों की अधिकता से क्या हम ऊब नहीं उठे हैं ? वास्तव में एक विलक्षण पुरुष का जीवन के साधारण, सरल और स्पष्ट स्वरों में हम लोगों से बातचीत करते दिखाई देना बहुत ही सुखकर है। कोई दलील देने के बदले स्वामी राम इस विश्वास से हमें एक कहानी द्वारा उपदेश देते हैं कि मनुष्य के वास्तविक जीवन को दूसरे के जीवन से अधिक सहानुभूति होती है और मानसिक तर्क-वितर्क के अमूर्त महल की अपेक्षा वह उसे (दूसरे के जीवन को) अधिक तौलता है। उनके वर्णन में कवियों का सा आमोद और ओज है। वे कवि-तत्त्वज्ञानी थे, इस लिये उनके विचारों और वचनों की अनन्त को बतानेवाली सूचनात्मकता अपूर्व है। वे जीवन के उस गम्भीर संगीत के तत्त्वज्ञ हैं जो केवल उन्हींको सुनाई देता है जो यथेष्ट गहराई तक जाते हैं।

राम स्वयं और हमारे लिये क्या थे, इसकी धारणा कराने के लिये इस स्थान पर कुछ पंक्तियों का लिखना उपयुक्त होगा। पंजाब के एक निर्धन ब्राह्मण कुटुम्ब में जन्म लेकर बचपन से ही उन्होंने स्वयं धीरता से अपना निर्माण किया। क्षण २ और दिन २ उन्हों ने धीरे २ अपने को गढ़ा। यह कहा जा सकता है कि, उनके भावी जीवन का सम्पूर्ण चित्र उनके हृदय-नेत्रों के सामने पहले ही से खिंचा हुआ था, क्योंकि बाल्यकाल में ही वे एक निश्चित उद्देश्य के लिये बड़ी गम्भीरता से और चेतनता पूर्वक चुप चाप तैयार हो रहे थे। गरीब ब्राह्मण कुमार के उपायों में प्रौढ़ मन की दृढ़ता थी। वह किसी भी परिस्थिति में हिचकता

नहीं था, किन्हीं भी कठिनाइयों से भीत नहीं होता था। उस अत्यन्त नम्र और मनोहर आकृति के नीचे, जिसमें प्रायः कुमारी की सी लज्जा और संकोच का स्पर्श था, ब्राह्मण बालक के दुर्बल शरीर में वह दृढ़ता छिपी हुई थी, जो हिलना नहीं जानती थी। यह बालक एक आदर्श विद्यार्थी था। अध्ययन पर इसका अनुराग सांसारिक सुखों की आशा से नहीं, परन्तु ज्ञान की नित्य बढ़ती हुई प्यास को बुझाने के लिये, जो हरेक सूर्योदय के साथ इसके अन्तःकरण में नया जोश भरती रहती थी। इनका नित्य का पढ़ना इस हवन-कुण्ड की वेदी पर पवित्र आहुतियाँ थीं।

रात को पढ़ने के हेतु दीपक के तेल के लिये वे कभी २ वस्त्र नहीं बनवाते थे, किसी २ दिन भोजन नहीं करते थे। स्वामी राम की छात्रावस्था में ऐसा प्रायः हुआ है कि वे शाम से सवेरे तक पढ़ने में लीन रहे। विद्या का प्रेम इतनी ज़ोर से उनके हृदय मसोसता रहा था कि विद्यार्थी-जीवन के साधारण सुभीते और शारीरिक आवश्यकतायें बिलकुल भूल गई थीं। भूख और प्यास, सर्दी और गर्मी का उनकी इस अतिशय ज्ञानपिपासा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। गुजरांवाला और लाहौर में उनकी छात्रावस्था के गवाह वर्तमान हैं, जिनका कथन है कि शुद्ध-चित्त गोस्वामी दिन-रात असहाय और अकेला परिश्रम करता था, बिना युद्ध के साधनों से जीवन से संग्राम करता था। और उन्हें वे अवसर याद हैं, जब दानशीलता का गर्व रखने वाले इस देश में भी बेचारे ब्राह्मण-बालक के पास कई दिनों तक बहुत थोड़ा या बिलकुल नहीं भोजन होता था, यद्यपि उसके चेहरे की प्रत्येक नस से अमित हर्ष और संतोष सदा टपकता

रहता था।

अतएव स्वामी राम अपने परवर्ती जीवन के उपदेशों में जिस ज्ञान से काम लेते हैं वह बड़ी कड़ी घोर तपस्या और कठिनतम परिश्रम से रत्ती २ कर के संचित किया था। तथा हमारे लिये अत्यन्त करुणा से परिपूर्ण है, क्योंकि हमें याद है कि, अत्यन्त दरिद्र और कटीले जीवन में वे अपने को कवि, तत्वज्ञानी, विद्वान् और गणितशास्त्री बना सके।

लाहौर के सरकारी कालेज़ के प्रधानाध्यापक ने जब प्रान्तिक मुल्की नौकरी (सिविल सर्विस) के लिये उनका नाम भेजने की दया दिखाने की इच्छा प्रकट की थी, तब राम ने सिर झुका और आखों में आंसू भर कर कहा था कि अपनी फसल बेचने के लिये मैंने इतना श्रम नहीं किया था, बांटने के लिये किया था। अतएव शासक कर्मचारी बनने की अपेक्षा अध्यापक होना उन्हें पसन्द हुआ।

ऐसा लिप्त और विद्या का इतना प्रेमी विद्यार्थी शुद्ध और सत्यप्रिय मनुष्य में स्वभावतः विकसित होता ही है।

विद्यार्थी अवस्था में राम की बुद्धि अपने इर्द-गिर्द की परिस्थितियों से पूर्णतया दूर रह कर पूर्ण एकान्त का सुख लूटती थी। वे अकेले रहते हुए पुस्तकों के द्वारा केवल महात्मा पुरुषों की संगति करते थे। अपने उच्च कार्यों में दिलोजान से लगे हुए वे न दाहिने देखते थे न बाँये। अपने जीवन को उन्हों ने बचपन से ही अपने आदर्शों के स्वर में मिला लिया था। उनकी विद्यार्थी-अवस्था में उन्हें जानने वाले उनके चरित्र की निर्मल स्वच्छता और जीवन के उच्च नैतिक लक्ष्य को सन्मान स्वीकार करते थे। अपने विद्यार्थी जीवन में स्वामी राम भीतर ही भीतर बढ़ रहे थे। वे अपने

जीवन को वारम्वार पूर्णता के साँचों में गला और ढाल रहे थे। अपनी प्रतिमा को पूर्णतया सुन्दर बनाने के लिये वे उसकी बेडौल रेखाओं को दिन रात छेनी से गढ़ते रहे, नित्यप्रति वे अपने से अधिक २ सुघड़ होते जाते थे। जब वे गणित-विद्या के अध्यापक नियत हुए तो पहला निबन्ध उन्हों ने यही लिखा था, "गणित का अध्ययन कैसे करना चाहिये"। उसमें वे यही उपदेश देते हैं कि पेट को चिकने और भारी पदार्थों से अधिक भर देनेसे प्रखर-बुद्धि विद्यार्थी भी अयोग्य और स्थूल-बुद्धि होजाता है। इसके विपरीत हलके भोजन से सदा परिष्कार और भाररहित मष्तिष्क की प्राप्ति होती है, जो विद्यार्थी-जीवन की सफलता का रहस्य है। उनका कहना है कि काम में उचित ध्यान लगने के लिये दूसरी जरूरी शर्त है मन की शुद्धता, और इस एक बात के बिना कोई भी उपाय विद्यार्थी के मनकी वृत्ति ठीक न रख सकेंगे।

इस तरह वे अपने विद्यार्थी-जीवन के अनुभवों को हमें ऐसे सरल उपदेशों में जमा देते हैं जैसे कि हमें उक्त निबन्ध में मिलते हैं। वे लिखने के लिये नहीं लिखते हैं, और न बोलने के लिये बोलते हैं। वे अपनी कलम तभी उठाते या मुख खोलते हैं जब उन्हें कुछ देना होता है। "मैं तथ्यों को बटोरने के लिये खूब यत्न करता हूँ, और जब वे मेरे हो जाते हैं तब मैं ऊँचे पर खड़ा होकर सदा के लिये अपने सत्य के संदेश की घोषणा करता हूँ"। ऊपर लिखी सम्मतियों की चर्चा यहां केवल उनकी पहले सिखने और तब सिखाने की शैली बताने के लिये की गई है। वे अपने पर वस्तुओं और विचारों के प्रभावों का निरीक्षण करते थे और तब अपने स्वतंत्र तथा विकार शून्य मतों को स्थिर करते थे, और उन्हें

सत्य या असत्य मान लेने के पूर्व वर्षों तक अपने जीवन की कठिन कसौटी में कसते थे। और दूसरों के काम के लायक फैलावट देने के पूर्व उन्हें पुष्ट करने में वे और भी अधिक समय लगाते थे जैसा कि ऊपर कहा गया है, जो बातें वे दूसरों को सिखाना चाहते थे उन्हें पूरी तरह बिना सीखे और उनके पूर्ण पण्डित बिना हुए वे अपने ओठ नहीं खोलते थे और शिक्षक बनाने का स्वांग नहीं रचते थे। उनके चरित्र की गुप्त कुंजियों में से यह एक है। क्या विद्यार्थी जीवन में और क्या अध्यापक की दशा में, स्वामी राम साहित्य और विज्ञान की अपेक्षा उच्चतर ज्ञान के लिये सदा गुप्त भाव से श्रम करते रहे और स्वामी बन कर संसार के सामने अपने सत्य की घोषणा करने के पूर्व वे ठीक डारविन की भांति जीवन के उच्चतर नियमों पर अपने विचारों और विश्वासों का धीरता पूर्वक गठन करते रहे। हम उन्हें सदा मानव जाति के प्रति अपने जीवन की बड़ी नैतिक ज़िम्मेदारी के गम्भीर ज्ञान के साथ काम करते पाते हैं। वे जानते थे कि अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये अध्यापक का आसन छोड़कर मुझे वह मञ्च ग्रहण करना पड़ेगा, जहां से समग्र मानव जाति तथा भावी सन्तति को उपदेश मिलेगा और वे अपने मनमें अपने इस दायित्व को सदा तौलते रहते थे। अतएव उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रम करने में और भी अधिक कष्ट उठाना तथा तीखा युद्ध करना पड़ा। प्रेम और विश्वास के पंखों को लगाकर उन्होंने धीरे २ और दृढ़ता पूर्वक अपने जीवन को परमात्मा के वक्षस्थल पर उड़ाना शुरू किया और नित्य प्रति ऊँचे उड़ते २ अनन्त में, ब्रह्म में, ईश्वर में अथवा, उन्हीं के शब्दों में, आत्मदेव में समा गये। उनकी आत्मा की अभिलाषाओं,

आध्यात्मिक दिक्कतों, चित्तवृत्ति सम्बन्धी कठिनताओं, और मानसिक क्लेशों का इतिहास हमारी आंखों से छिपा हुआ है। परन्तु उनके जीवन के इस भाग में परिश्रम से प्राप्त किये हुए अनुभवों की ही फसल हमें उनके स्वामी-जीवन की शिक्षाओं में मिलती है। अनेक बार सारी रात वे रोते रहे और सवेरे उनकी सुपत्नी को उनके बिछौने की चद्दर आंसुओं से भीगी मिली। उन्हें क्या कष्ट था? किस लिये वे इतने दुखी थे। कारण कुछ भी हो, उच्चतम प्रेम के लिये उनकी आत्मा की उन उत्कट पारलौकिक आकांक्षाओं के आंसू ही उनके विचारों को उपजाऊ बनाते हैं। नदियों के तटों पर, जंगलों के एकान्त अन्धकारों में, प्रकृति के बदलते हुए दृश्यों को देखने और आत्मा के चिन्तन में उन्होंने अनेक रातें बेसोये काटीं। इस दशा में कभी तो अपने संगी से बिछुड़े हुए विरही पक्षी के शोक-सन्तप्त स्वर में अपने रचे हुए गीत गाते थे और कभी २ उत्कट ईश-भक्ति से मूर्छित हो जाते थे, और चेत होने पर अपने नेत्रों की गंगा के पवित्र जल में स्नान करते थे। उनके प्रेम की अवस्थायें सदा अज्ञात रहेंगी, क्योंकि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को हमसे छिपा रखना पसन्द किया है और उनके ज्ञान के विकास के ब्यौरे को उनके सिवाय और कोई नहीं जानता। किन्तु यह निस्सन्देह है कि स्वयं कवि और देवदूत होने के पूर्व वे साधुओं महात्माओं तथा कवियों के प्रभापूर्ण समूह की संगति में रहते थे। ईरान के सूफियों, विशेषतः हाफ़िज़ अत्तार, मौलाना रूम, और शम्सतबरेज़ के वे निरन्तर साथी थे। सदियों के अपने धार्मिक उत्कर्ष के सहित भारत के महात्मागण उनकी आत्मा को ज्ञान देने वाले थे। तुलसीदास और सूरदास निस्सन्देह उनके प्रेरक थे। चैतन्य के उन्मत्त

प्रेम, तुकाराम और नानक की माधुरी, कबीर और फरीद तथा हसन और बूअली कलन्दर की भावनाओं, प्रह्लाद और ध्रुव के विश्वास, मीराबाई, बुल्लाशाह और गोपालसिंह की अतिशय आध्यात्मिकता, कृष्ण की गूढ़ता, शिव और शंकर के ज्ञान, इमर्सन, कैंट, गेटे और कार्लाइल के विचारों; पूर्व के आलसी वेदान्त की तंद्रा दूर करने वाले पाश्चात्य वाल्ट ह्विटमैन और थोरो के स्वतंत्र गीतों, पूर्व और पश्चिम दोनों ही के धार्मिक सिद्धान्तों और अन्ध विश्वास मूलक तत्त्व विद्याओं पर प्रभाव डालने वाले तथा मानव-हृदय को उदार बनाने वाले और मानव-मन को सदियों की मानसिक गुलामी से छुटाने वाले क्लिफोर्ड, हक्सले, टिंडल, मिल, डार्विन और स्पेंसर की वैज्ञानिक सत्यता और स्पष्टवादिता —इन सब तथा अन्य अनेक प्रभावों ने व्यक्तिगत रूप से एवं मिल कर उनके मन को आदर्शवादी बनाया था। उनके स्वामी जीवन में उन्हें हम सदा परमात्मा में निवास करते पाते हैं और लड़कपन के विनीत और लज्जाशील विद्यार्थी की छाया भी उनमें नहीं दिखाई पड़ती। अब उनका स्वर कहीं अधिक शक्तिशाली, चरित्र ओजस्वी, अनुभव प्रेरक, और शरीर आकर्षक होगया था। उनकी उपस्थिति आस पास के स्वयं वायु मण्डल को ही मोह लेती थी। उनकी संगति में मनुष्य के मन की ऋतुयें चौमुहे सुन्दर चक्कर में बदलती रहती थीं। उनकी सच्चाई का जादू कभी तो उपस्थित जनसमूह को रुला देता था और कभी परम संतोष की मुसकियां पैदा करता था। साधारण से साधारण वस्तुओं को भी हमारी दृष्टि में ईश्वर के ऊँचे से ऊँचे अवतारों का रूप देने में वे कवि की भांति समर्थ होते थे। उनके स्पर्श से किसी में कवि की तो किसी में चित्रकार की, किसी में उत्कट भक्त की

तो किसी में शूरवीर की रुचियां पैदा होती थीं। अनेक साधारण मन इस दर्जे का आवेश बोध करते थे कि उन्हें अपनी मानसिक शक्ति में वृद्धि प्रतीत होती थी।

उनके एक अमेरिकन मित्र ने उनके मरने पर इन पंक्तियों के लेखक को नीचे दिया पत्र लिखा था। इसमें उनका यथार्थ वही वर्णन हुआ है जो कुछ वे हम लोगों के लिये थे और इस कारण से यहां औचित्य के साथ उद्धृत किया जा सकता है।

"भाषा के उदासीन संकीर्ण शब्दों में जिस बात को प्रकट करना अति कठिन है उसे व्यक्त करने की जब मैं चेष्टा करता हूँ तो शब्द मेरा साथ नहीं देते।

"राम की भाषा मधुर अज्ञान बालक की, पक्षियों, पुष्पों, बहती नदी, पेड़ की हिलती हुई डालों, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की भाषा थी। संसार और मनुष्यों के बाहरी दिखावे के नीचे दौड़ने वाली भाषा उनकी भाषा थी।

"समुद्रों और महाद्वीपों, खेतों और घासों तथा वृक्षों की जड़ों के नीचे से गहरा जाता हुआ उनका जीवन प्रकृति में मिलता था, बल्कि स्वयं प्रकृति का ही जीवन था। उनकी भाषा मनुष्यों के क्षुद्र विचारों और स्वप्नों के नीचे दूर तक प्रवेश करती थी। उस विलक्षण मधुर तान को सुनने वाले कान कितने थोड़े हैं। उन्होंने उसे सुना, उस पर अमल किया, उसकी सांसें लीं, उसकी शिक्षा दी, और उनकी समग्र आत्मा उसके गहरे रंग से रंगी थी। वे आनन्दमय धावन थे।

"ऐ मुक्त आत्मा! ऐ आत्मा, जिसका शरीर से नाता पूरा हो चुका है!! ऐ उड़ती हुई, अकथ सुखी, दूसरे लोकों में

जाती हुई, मुक्त फिर वास्तविक दशा को प्राप्त आत्मा, तुझे प्रणाम है!!

"वे इतने नम्र, सरल, बालक-सदृश, पुनीत और श्रेष्ठ, सच्चे, एकाग्र और गर्वरहित थे कि, सत्य की चाह में विकल मनवाले जिस किसी का उनसे संसर्ग हुआ वह बिना अपार लाभ उठाये न रहा। प्रत्येक व्याख्यान या विद्यार्थियों को पाठ पढ़ाने के बाद उनसे प्रश्न किये जाते थे, जिनके उत्तर सदा ही अति स्पष्ट, संक्षिप्त, मधुर और प्रेमपूर्ण होते थे। वे सदा आनन्द और शान्ति से भरे रहते थे और जब वार्तालाप, लिखने या पढ़ने में नहीं लगे होते थे तब निरन्तर "ॐ" रटा करते थे। वे हरेक में और सब में ईश्वर के दर्शन करते थे और प्रत्येक को "मंगलमय परमेश्वर" कह कर पुकारते थे।

"राम आनन्द के सदा उमड़ते स्रोत थे। ईश्वर में ही वे जीते थे, ईश्वर में ही उनकी गति और अस्तित्व था—नहीं, वे ईश्वर के स्वयं ही थे। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था, "जिन्हें आनन्द लूटने की इच्छा है वे तारागण-प्रकाशित प्रभामय आकाश में चमकते हुए हीरों का मज़ा लूट सकते हैं, हँसते हुए वनों और नाचती हुई नदियों से अथाह सुख ले सकते हैं, शीतल पवन, उष्ण सूर्यज्योति और व्यथा-नाशक चांदनी से अनन्त आनन्द पा सकते हैं। और प्रकृति ने सब को निर्विघ्न सेवक इन्हें बना रक्खा है। जिनका विश्वास है कि उनका सुख किन्हीं विशेष अवस्थाओं पर अवलम्बित है, वे सुख के दिन को अपने से सदा पीछे हटते और मृग-जल की भांति निरन्तर दूर भागते पावेंगे। संसार में स्वास्थ्य के नाम से पुकारे जानेवाले वस्तु आनन्द का साधन होने

के बदले समस्त प्रकृति, स्वर्गों और सुन्दर दृश्यों के गौरव और सुगन्धित-तत्त्व को छिपाने में केवल बनावटी परदे का काम देती है।'

"राम पहाड़ी प्रदेश में ख़ेमे में रहते थे और रंच हाउस (Ranch House) में भोजन करते थे। यह एक मनोहर स्थल था। विषम वन्य दृश्य, और दोनों ओर सदा हरित वृक्षों तथा घनी उलझी हुई झाड़ियों से ढके हुए पहाड़। सैक्रामेंटो नदी प्रचण्डवेग से इस घाटी से नीचे उतरती है। यहीं राम ने अनेकानेक पुस्तकें पढ़ीं, अपनी उत्कृष्ट कवितायें लिखीं और निरन्तर घण्टों तक ध्यान किया। नदी में जहां पर धारा बड़ी तेज़ थी, वे एक बड़ी चट्टानी पटिया पर नित्य बैठते थे और केवल भोजन के समय घर आते थे, जब वे सदा हमें उत्तम बातें सुनाते थे। शास्ता स्रोतों से अनेक लोग उनसे मिलने आया करते थे और सदा उनका सहर्ष स्वागत किया जाता था। उनके श्रेष्ठ विचार सब पर गहरी और टिकाऊ छाप जमा देते थे। जो केवल कौतूहल से देखने आते थे वे भी तृप्त होकर लौटते थे, और सत्य का बीज सदा के लिये उनके हृदयों में जम जाता था। सम्भव है कि कुछ दिनों तक उन्हें इसका ज्ञान न होता हो परन्तु काल पाकर उसका अंकुरित होना और ऐसे पुष्ट तथा प्रबल पेड़ में बढ़ना अनिवार्य है, जिसकी शाखायें चारों ओर फैल २ कर संसार के सब भागों को भाईचारे और दैवी प्रेम के बन्धन में बट देंगीं। सत्यता के बीज सदा बढ़ते हैं।

"वे बड़ी २ दूर तक टहलने जाते थे। इस प्रकार शास्ता स्रोतों में रहते हुए वे साधारण, स्वतंत्र, प्रवृत्त, और आनन्दमय जीवन बिताते थे। वे बड़े सुखी थे। उन्हें अना-

थास हंसी आती थी और जब वे नदी तट पर होते थे तब घर से साफ सुनाई पड़ती थी। बालक और साधु की तरह वे स्वतंत्र थे, स्वतंत्र थे। बराबर कई २ दिनों तक वे ब्रह्म-भाव में रहते थे। भारत के प्रति उनकी अचल भक्ति और अन्धकार में पड़े हुए भारतवासियों को उठाने की उनकी कामना वास्तव में पूर्ण आत्मोत्सर्ग थी।

"इस स्थान से चले जाने के बाद मुझे उनका एक पत्र मिला था। पीछे मुझे पता चला कि यह कठिन बीमारी की हालत में लिखा गया था। इसमें लिखा था, "एकाग्रता और शुद्ध दैवी भावक की इन दिनों विलक्षण प्रबलता है और ब्रह्म-भाव बड़े वेग से अधिकार जमा रहा है। शरीर चंचल वासनाओं और निरन्तर परिवर्तनों के अधीन है, इस लिये इस दुष्ट मृग-जल से मैं अपनी एकता कभी नहीं मानने का। बीमारी में एकाग्रता और आन्तरिक शान्ति बड़ी ही उत्कट हो जाती है। वह नर या नारी, जिसकी बन्द मुट्ठी शारीरिक रोगों आदि सरीखे क्षणिक अतिथियों का उचित सत्कार करने में आनाकानी करती है, वास्तव में बड़ी ही सूम है।"

"सदा वे हम लोगों से कहा करते थे, "हर घड़ी अनुभव करो कि, जो शक्ति सूर्य और नक्षत्रों में अपने को प्रकट करती है, वही मैं हूं, वही हूं, वही तुम हो। इस वास्तविक आपको, अपने इस गौरव को लो, इस जीवन को नित्य समझो, अपनी इस असली सुन्दरता पर मनन करो और तुच्छ शरीर के समस्त विचारों और बन्धनों को साफ भूल जाओ, फिर देखोगे कि तुम्हारा इन मिथ्या, जान पड़ने वाली वास्तविकताओं (नहीं, छायाओं) से कभी कोई सम्पर्क ही नहीं था। न मृत्यु है, न रोग, न शोक। पूरे आनन्दी, पूरे मंगलमय,

शान्ति से भरे हुए बनो। तुच्छ आप या शरीर से परे होकर पूरे शान्त रहो"। यही वे हरेक को और सब को सिखाते थे।

"बिना पैसा-कौड़ी के अपने देश के लिये जो विदेश आने का साहस करे वह कैसी वीर, सत्यनिष्ठ, भक्त और ईश्वरोन्मत्त आत्मा है।

"राम जैसे शुद्ध मनुष्य से भेंट और बात चीत करने तथा सहायता देने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह विचार आश्चर्यमय है। वे ऊषा की सन्तान थे और सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपना संगीत सुनाया करते थे। घड़ी के घंटों या मनुष्यों के ढंगों और श्रमों की उन्हें ज़रा सी भी परवाह नहीं थी। उनके लचीले और शक्तिशाली विचार सूर्य से मिले हुए चलते थे और इस प्रकार दिन चिरस्थायी प्रातः-काल बन रहता था। थोरो ने कहा है "शारीरिक श्रम के लिये लाखों यथेष्ट जागे हुए हैं, परन्तु कोटियों में कहीं एक काव्यमय और दैवी जीवन के लिये (जागा है) राम उन दुर्लभ आत्माओं में से एक थे जो कभी २ संसार में आती हैं।

कहा जाता है सूर्य केवल उसका छाया-चित्र है,
कहा जाता है मनुष्य उसकी प्रतिमा में है,
कहा जाता है वह नक्षत्रों में चमकता है,
कहा जाता है वह सुगन्धित फूलों में मुसक्याता है,
कहा जाता है वह बुलबुलों में गाता है,
कहा जाता है वह विश्व-पवन में श्वास लेता है,
कहा जाता है वह बरसते बादलों में रोता है,
कहा जाता है वह जाड़े की रातों में सोता है,
कहा जाता है वह घरघराती नदियों में दौड़ता है,
कहा जाता है वह इन्द्र-धनुष की मेहराबों में झूलता है,

प्रकाश की बहिया में, वे कहते हैं, वह यात्रा करता है।
ऐसा ही राम ने हम से कहा और यही बात है!

आध्यात्मिक दृष्टि से वे केवल एक विचार के मनुष्य कहे जा सकते हैं। उसके सब उपदेशों में जो महान् विचार अन्तर्धारा की तरह बह रहा है वह है देहाध्यास (अहंकार) का त्याग और अपने को सृष्टि का आत्मा अनुभव करना। यही है उस उच्च जीवन की प्राप्ति, जिसमें स्थानीय "अहं" भूल जाता है और विश्व-ब्रह्माण्ड मनुष्य का "अहं" बन जाता है। "तू जो कुछ देखता है, वही तू है"। मनुष्य ईश्वर है। मिथ्या अहंकार ही सब बन्धनों का कारण है। इसे छोड़ते ही मनुष्य की आत्मा सर्वत्र और सबमें व्यापक सार्वभौम आत्मा बन जाती है। यह उच्च जीवन प्राप्त करना है और वे सभी उपाय राम को अंगीकार हैं, जिनसे इसकी प्राप्ति हो सकती है। कांटों का बिस्तर हो या फूलों की सेज, जिससे हम आत्मानुभव की अवस्था प्राप्त कर सकें, वही धन्य है। पूर्ण आत्मोत्सर्ग इस अनुभव की आवश्यक पहली दशा है। और विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न उपायों से आत्मत्याग किया जा सकता है। किसी एक व्यक्ति के विकास के लिये आवश्यक विचार और विश्वास के विशिष्ट निजी संस्कारों और साधनों पर राम कदापि नहीं आग्रह करते हैं। वे अपने मुख्य सिद्धान्तों का सामान्य ढांचा हमारे सामने रखने की चेष्टा करते हैं और उन उपायों को अंकित करते हैं जिनसे उन्हें अत्यन्त सहायता मिली थी। बुद्धि जब कभी उनके आदर्श में शंका करती थी तो वे पूर्व और पश्चिम के अद्वैतवादी तत्त्वज्ञान की व्यवस्थित व्याख्या द्वारा समाधान कर देते थे, और इस प्रकार बुद्धि को उनके सत्य के सामने झुकना पड़ता था।

उनके दार्शनिक मत पर तर्क-वितर्क करने के अभिप्राय से उनके पास आनेवाले लोगों से वे, इसी प्रकार नियमित रूप से दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करने को कहते थे और इस आधार पर वाद विवाद करना बिलकुल अस्वीकार करते थे कि वाद-विवाद के द्वारा नहीं, किन्तु वास्तविक, उत्कट और गम्भीर चिन्ता द्वारा ही सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

जब हृदय उनके आदर्श में सन्देह करता था तो वे विभिन्न वृत्तियों के द्वारा उसे उच्चतम प्रेम से परिपूर्ण कर देते थे और अनुभव करा देते थे कि सब कुछ एक ही है और प्रेम को द्वैत से कभी मतलब नहीं होता। चित्त के द्वारा वे बुद्धि को भावुक बनाते थे और बुद्धि के द्वारा चित्त को युक्तिशील बनाते थे। परन्तु सत्य उनके ज्ञान में सर्वोपरि था और दोनों से ऊँचा था। केवल अपनी ही बुद्धि और चित्त से सहमत होने के लिये वे इस विधि का आश्रय नहीं लेते थे, परन्तु दूसरों से भी सहमत होने के लिये इसी क्रिया का सहारा लेते थे। जब किसी का बुद्धि के कारण उनसे मतभेद होता था तो वे उसके लिये प्रेम के विचार से वाद-विवाद त्याग देते थे और इस प्रकार उससे एकता या मतैक्य प्राप्त करते थे, जिस मतैक्य को वे सत्य की प्रतिमा मानते थे और जिसका नाश उन्हें किसी लिये भी इष्ट नहीं था। जब किसी मनुष्य के चित्त का उनसे मतभेद होता था तो चित्त के क्षेत्रों को छोड़ कर वे उससे बुद्धि द्वारा सदालाप करते थे। वे एक ऐसे मनुष्य थे जिनसे किसी का मतभेद नहीं हो सकता था। यदि उनके विचार आपको प्रभावित करने में असमर्थ होते थे तो उनकी पवित्रता और प्रेम का प्रभाव पड़ता था। बिना उनसे बात चीत किये ही मनुष्य को प्रतीत होता था कि

उनसे बिना प्रेम किये नहीं रहा जा सकता। इस प्रकार समस्त वाद-विवाद उनके सामने शान्त होजाते थे और मेरा विश्वास है कि, ऐसे मनुष्य के लेख नीची श्रेणी की समालोचना के अयोग्य हैं, क्योंकि आपसे एकमत होना और एकता स्थापित करना उनका मुख्य उद्देश्य है। आप कोई भी हों, वे तुरन्त वही मानने के लिये तैयार हो जाँयगे जो कुछ उनसे मनवाने का आपका विचार होगा।

अन्त में मैं वेदान्त शब्द का अर्थ समझाना चाहता हूं जो उनके लेखों में वारम्बार आता है। जिस वेदान्त शब्द का स्वामी राम बड़े प्रेम से व्यवहार करते हैं वह उनके लिये अनेकार्थवाची है। धर्म या तत्वज्ञान के किसी विशेष पंथ या क्रम के अर्थ में व्यवहार करके वे उसके भाव को संकीर्ण नहीं बनाना चाहते। यद्यपि किसी कारण से उन्हें इस शब्द से प्रेम होगया था तथापि वे इसे सदा बदल डालने को तैयार रहते थे, परन्तु जिस भाव को इससे ग्रहण करते थे उसे त्यागने को तैयार नहीं थे। इस वस्तुवादी के लिये गुलाब का नाम कोई चीज़ नहीं था, इन्हें तो गुलाब और उसकी सुगन्धि से काम था। उनकी शिक्षाओं को समझने और आदर की दृष्टि से देखने के लिये आध्यात्मिक सूक्ष्मताओं के टेढ़ेमेढ़े सन्देहों में जाने की हमें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दुपहरी के उज्वल प्रकाश में जीवन के पथों पर हमारे साथ चलते २ वे अचानक हमें पकड़ लेते हैं और उदय होते हुए सूर्य की लाली में, गुलाब की चमक में और मोती समान ओस-कणों के भंगों (चढ़ाव-उतार) में वे हमें वेदान्त की शिक्षा देते हैं। उनके साथ चलते २ उनकी शिक्षाओं के प्रतिध्वनि हमें प्रसन्न पक्षियों की चहचहाहट

में, बरसते हुए पानी के गलित संगीत में, और "मनुष्य तथा पशु-पक्षी दोनों" की जीवन-धड़कनों में सुनाई देती है। फूलों के सवेरे के खिलाव में उनकी बाइबिल (धर्मग्रन्थ) खुलती है। सांझ की झलक में उनका वेद चमकता है। बहुरंगे जीवन की जीती-जागती व्यक्तियों में उनका अलकोरान मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है।

"समय और विचार मेरे मापने वाले थे,
उन्होंने अपने रास्ते खूब बनाये,
उन्हों ने समुद्र को भरा और पत्थर,
चिकनी मट्टी तथा सीप की तहों को पकाया।

मानव-हृदय रूपी कमल के दल उनके प्रमाण के पत्र थे और उन्हें पता लगा था कि प्रत्येक नर और नारी ने अपने आप में वेदान्त के अर्थों को स्थान दे रक्खा है। हरेक उठती हुई जाति इस सत्य का समर्थन करती है और हरेक मरती हुई जाति इस अनुभव का अभाव प्रकट करती है। प्रत्येक महापुरुष इसके प्रकाश की ऊँची डीवट है। प्रत्येक महात्मा इसकी दमक फैलाता है। प्रत्येक कवि इसके गौरव का स्वाद लेता है। प्रत्येक कुशल (कारीगर) अपने अतिहर्ष के आंसुओं में इसे नेत्रों से बहाता है। राम कोई प्रफुल्लित और संतुष्ट मुख-मण्डल देखते ही उसे वेदान्ती मुख की उपाधि दे देते थे। कभी किसी ऐसे विजयी का सामना उनसे नहीं हुआ जिसे उन्होंने व्यावहारिक वेदान्ती न कहा हो। जापानियों का दैनिक जीवन देख कर उन्हें वे अपने वेदान्त का अनुयायी कहने लगे। अमेरिकनों के आल्प्स और अन्य पहाड़ों पर चढ़ने तथा नियागारा की तेज़ धारा को तैर कर पार जाने के साहस पूर्वक कठिन कृत्यों को वे वेदान्ती

प्रकृति का प्रकाश समझते थे। अंगच्छेद द्वारा वैज्ञानिक अनु-सन्धान के लिये जब किसी के अपने शरीर का श्रेष्ठ दान करने का समाचार वे पढ़ते थे तब उन्हें अपने तत्वज्ञान का व्याव-हारिक स्वरूप सिद्ध होते दिखाई देता था ऐसे अवसरों पर उनका चेहरा दमकने लगता था और नेत्रों में आँसू भर आते थे, और वे कहते थे, "सचमुच यह सत्य की सेवा है" सच्ची लोकतंत्रता और सच्चे साम्यवाद के आधुनिक आदर्शों में स्वामी राम को पूर्वीय वेदान्त की अन्तिम विजय दिखाई देती थी।

आन्तरिक पुरुष और आन्तरिक प्रकृति की प्रारम्भिक एकता के सत्य पर खड़े हो कर वे कहते हैं, केवल वही जीते हैं जो प्रेम की विश्वव्यापी एकता का अनुभव करते हैं। जीवन के सच्चे सुख केवल उन्हीं को मिलते हैं जो भूमि-कमल और वायोलेट (एक विलायती फूल) की नसों के खून को अपना ही मानते हैं। अपने आपमें सब चीज़ों को और सब चीज़ों में अपने आपको देखना ही असली आंख-वाला होना है, जिसके विना प्रेम और उसे (आंख को) खींचनेवाली सुन्दरता हो ही नहीं सकती। और वे पूछते हैं, विना प्रेम या आकर्षण के जीवन है ही क्या? इस वृत्ति से जब किसी व्यष्टि-जीवन को वे शरीर और चित्त से ऊपर के मण्डलों में उठते देखते हैं तो उन्हें आकाश में इन्द्र धनुष दिखाई देता है और प्रसन्नता से उछल पड़ते हैं। बुद्धि द्वारा वेदान्त के सिद्धान्तों का मान लिया जाना ही उनके लिये वेदान्त नहीं हैं, वे प्रेम की पवित्र वेदी पर शरीर और चित्त के अत्यन्त गम्भीर और शुद्ध चढ़ावे को वेदान्त समझते हैं। तत्वज्ञानों और न्यायों, पुस्तकों और अवतरणों,

पाण्डित्य और वाग्मिता से बौद्धिक अंगीकृति की पुष्टि और वृद्धि हो सकती है, किन्तु इन उपायों से राम के वेदान्त की प्राप्ति किसी को नहीं हो सकती। शरीर और चित्त का असली और सच्चा त्याग तभी होता है, जब आत्मा में प्रेम की ज्वाला जल उठती है। शरीर और उसकी हरेक नस का प्रेम के चरणों में मानसिक अर्पण और प्रेममय सेवा में चित्त का उत्सर्ग मनुष्य के भीतर ही स्वर्ग के द्वार खोल देता है। राम का वेदान्त उस अलौकिक चेतनता की सुन्दर शान्ति है जो शरीर और चित्त के बन्धनों से मुक्त है, जहां सब शब्द का अन्त हो जाता है, जहां सूर्य और चन्द्र का विसर्जन हो जाता है, जहां समग्र दृष्टि स्वप्न की तरह हिलोर लेकर अनन्त में भँवरती है। इस स्थान से वे नीचे सीढ़ी लटकाते हैं कि हम उन तक पहुँच सकें और नीचे की दुनिया के दृश्य देखें। चिरशान्ति वहां बँट रही है और मनुष्य पूरी तरह ईश्वर में लुप्त हो जाता है। वहां सब तर्क-वितर्क रुक जाता है। वहां जो सब हैं वे केवल चारों ओर देखते और मुस-कुराते हैं और हरेक पदार्थ से कहते हैं, "तू अच्छा है" "तू विशुद्ध है", "तू पवित्र है", "तू वह है"।

न वहाँ सूर्य चमकता है, न चन्द्र जगमगाता है,
प्राण और शब्द मौन हैं,

आत्मा की मधुर निद्रा में सम्पूर्ण जीवन आराम कर रहा है,
सुनहली शान्ति और स्थिरता और प्रकाश के सिवाय कुछ नहीं है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!



स्वामी रामतीर्थ ।

पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध ।

(रविवार ता० १६-११-१९०२ को दिया हुआ व्याख्यान ।)

बहनों और भाइयो,

पिछले सप्ताह में जो चार व्याख्यान दिये गये हैं उन्हीं के सिलसिले में आज का विषय है। जिन्हों ने पिछले व्याख्यान सुने हैं वे इसे खूब समझेंगे।

आज के व्याख्यान में राम पाप की व्याख्या न करेगा, अथवा इसे कौन लाया, कहां से यह आया, या संसार में यह पाप क्योंकर है, कुछ लोग दूसरों से अधिक पापी क्यों होते हैं, कुछ लोगों में दूसरों से लालच क्यों अधिक होता

है, और दूसरों में लालच की अपेक्षा क्रोध क्यों अधिक होता है। यदि समय मिला तो इन प्रश्नों का विचार किसी दूसरे व्याख्यान में किया जायगा।

पाप शब्द का व्यवहार उसके साधारण अर्थ में आज हम कर रहे हैं, अथवा उस अर्थ में जो अर्थ समस्त ईसाई संसार उसका ग्रहण करता है।

इस संसार में आप कुछ अति विचित्र घटना, अत्यंत चमत्कार पूर्वक घटना देखेंगे। आप इस संसार में कुछ ऐसी बातें देखेंगे जो तत्त्वज्ञानियों की चतुरता को मात करती हैं, और आपको कुछ ऐसे नैतिक और धार्मिक तथ्य दिखाई पड़ेंगे जो वैज्ञानिकों को उद्विग्न करनेवाले हैं। वेदान्त के प्रकाश में आज इनकी व्याख्या की जायगी। पापकी अद्भुत घटना भी इन्हीं विचित्र तथ्यों के अन्तर्भुक्त है। यह कैसी बात है कि हरेक मनुष्य जानता है कि इस संसार में जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्रत्येक पेड़ जो पृथ्वी पर दिखाई देता है वह एक दिन नष्ट अवश्य होगा। प्रत्येक पशु जो पृथ्वी पर दिखाई देता है एक दिन नष्ट अवश्य होगा, प्रत्येक मनुष्य मरेगा अवश्य। हर आदमी यह जानता है। बड़े बड़े सूरमा, सिकन्दर नेपोलियन, वाशिंगटन, वेलिंग्टन, जो लाखों मनुष्यों की मौत के कारण हुए, सब मरे। ये सब के सब, जिनके हाथों के बयान के बाहर नरसंहार और रक्तपात हुआ, मृत्यु को प्राप्त हुए। वे भी मरे, और मरों को जिलाने वाले भी मरे। हम जानते हैं, शरीर नश्वर है। हरेक मनुष्य यह जानता है। परन्तु व्यवहार में कोई भी इस पर विश्वास नहीं करता। बुद्धि से तो वे इसे स्वीकार करते हैं, परन्तु व्यावहारिक विश्वास इस तथ्य में नहीं दिखलाते। यह क्या

बात है ? जो सत्तर वर्ष का हो चुका है; जो ६० वर्ष का होने वाला है, ऐसे बूढ़े से बूढ़े मनुष्य के पास जाओ और तुम देखोगे कि वह भी अपने सम्बन्धो की फैलावट जारी रखना चाहता है, वह हमेशा इस संसार मे रहना चाहता है, मृत्यु को परित्याग करना चाहता है, और व्यावहारिक जीवन में अपनी मौत की बात कभी नहीं सोचता । वह अपनी सम्पत्ति बढ़ाना चाहता है, वह अपने नातेदारों और मित्रों का मण्डल बढ़ाना चाहता है, वह अपने शासन में अधिकाधिक सम्पत्ति चाहता है। वह जीते रहने की आशा करता है। व्यवहारतः मृत्यु में उसका कोई विश्वास नहीं है, और इसके सिवाय, मृत्यु का नाम ही उसके सारे शरीर में मूड़ की चोटी से पैर के अंगूठे तक, कंपकपी पैदा कर देता है। मृत्यु के नाम से शरीर थरथराने लगा है। यह क्या बात है कि मनुष्य मृत्यु के विचार को नहीं सह सकता मृत्यु के नाम को नहीं सह सकता और साथ ही जानता है, कि मौत अवश्यंभावी है यह क्या बात है ? यह एक नियमविरोध है, एक प्रकार की उलटभासी है। इसे समझाओ। मनुष्यों को मृत्यु में व्यावहारिक विश्वास क्यों नहीं होता, यद्यपि उसका बौद्धिक ज्ञान उन्हें होता है ? वेदान्त इसे इस प्रकार समझाता है। "मनुष्य में वास्तविक आत्मा है,जो अमर है, वहां वास्तविक आत्मा है जो नित्य निर्विकार, आज, कल्ह और सदा एकरस है। मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु है जो, मृत्यु को नहीं जानती, किसी प्रकार के परिवर्तन को नहीं जानती। मृत्यु में व्यावहारिक अविश्वास का कारण मनुष्य में इस वास्तविक आत्मा की उपस्थिति है। और मृत्यु में लोगों के व्यावहारिक अविश्वास के द्वारा यह वास्तविक,नित्य, अमर, आत्मा अपने अस्तित्व को प्रमाणित करता है।"

अब हम एक दूसरी विचित्र बात पर आते हैं, स्वाधीन होने की अभिलाषा की विचित्रता। इस संसार में प्रत्येक प्राणी स्वतंत्र होना चाहते हैं, कुत्ते, शेर, चीते, पक्षी, मनुष्य स्वाधीनता से प्रेम करते हैं। स्वाधीनता का विचार सार्वभौम है। राष्ट्र खून गिराते हैं और मानव जाति के रक्त से भूमि तर करते हैं, पृथ्वी का सुन्दर मुख स्वाधीनता के नाम पर हत्याकाण्ड से, रक्त से लोहित किया जाता है। ईसाई, हिन्दू, मुसलमान, सबने अपने सामने एक लक्ष्य रक्खा है। वह क्या है? मुक्ति, जिसका छोटा सा अर्थ स्वाधीनता है.

भारत में किसी मन्दिर में एक मनुष्य मिठाई बाँटता हुआ दिखाई पड़ा था। बड़े हर्ष और अभ्युदय में भारतवासी गरीबों को मिठाई या दूसरी चीजें बाँटते हैं। किसी ने आकर पूछा, इस प्रसन्नता का कारण क्या है। मनुष्य ने कहा कि मेरा घोड़ा खोगया। चकित होकर उन्हों ने कहा, "वाह! तुम्हारा घोड़ा खोगया और तुम आनन्द मना रहे हो?" उसने कहा, "मेरी बात का उलटा अर्थ न समझो। घोड़ा तो मैंने खो दिया परन्तु सवार को बचा लिया। चोरों के एक दल ने मेरा घोड़ा चोरा लिया। जिस समय घोड़ा टहलाया गया था उस समय मैं उस पर सवार न था। यदि मैं घोड़े पर सवार होता तो शायद मैं भी चोरा जाता। धन्यवाद है कि, घोड़े के साथ मैं भी नहीं चोरा लिया गया"। लोग जी खोल कर हंसे। वाह, कैसा सीधा आदमी है!

भाइयो और बहनो, यह कहानी हास्यजनक जान पड़ती है। परन्तु हरेक को इसे अपने पर घटा कर देखना चाहिये कि, वह इस मनुष्य से भी अधिक बेढंगा वर्ताव कर रहा है या नहीं। इसने घोड़ा खो दिया, किन्तु अपने को बचा लिया।

किन्तु हजारों, नहीं लाखों मनुष्य क्या कर रहे हैं ? वे घोड़े को बचाने की चेष्टा कर रहे हैं और सवार को खोते हैं। यह कितनी बुरी बात है। इस प्रकार जब उसने घोड़े को खो दिया और सवार को बचा लिया तो उसके लिये आनन्द मनाने का अवसर था। सभी जानते हैं कि, असली आत्मा, या वास्तविक स्वयं, अहं या आत्मा का नक्षत्र की तरह टिमटमानेवाले शरीर से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा सवार या घोड़े वाले का घोड़े से। किन्तु किसी से भी जाकर उसकी वास्तविक प्रकृति और उसके विषय में पूछिये। तुम स्वयं क्या हो, तुम्हारा आत्मा क्या करता है ? उत्तर मिलेगा, "मैं महाशय अमुकामुक हूँ। मैं फलां २ कार्यालय में काम करता हूँ"। ये सब लक्षण और उत्तर केवल स्थूल शरीर से संबन्ध रखते हैं। अर्थात् ये ऐसे उत्तर हैं, जो असंगत हैं। हम पूछते हैं, "तुम कौन हो, तुम क्या ?" और उसके उत्तर से उसकी वास्तविकता पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। यह निशान से दूर है, प्रसंग से संगत नहीं है। हम उसके आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं और वह हमें घोड़े की बात बता रहा है। हम सवार का हाल जानना चाहते हैं, और वह प्रश्न को टालकर वे बातें हमें बताता है, जो बिलकुल नहीं पूछी गई थीं। क्या हम घोड़े ही को सवार नहीं समझ रहे हैं? घोड़ा खो गया है, अब गुलगपाड़ा मचाना चाहिये, खोगया, खोगया, खोगया ! समाचार पत्रों में छपवा देना चाहिये, खोगया, खो गया, खोगया। क्या खोगया ? घोड़ा ? नहीं, घोड़ा नहीं खोया है। हरेक घोड़े की बात कहता है। शरीर के लक्षण, चिन्ह और हाल सब कोई कहने को तैयार है। खोई हुई चीज़ है घोड़-सवार; खोई हुई वस्तु है आत्मा, वास्तविक स्वयं, सार पदार्थ, जीवात्मा। महान् आश्चर्य !

सच्चे स्वयं, सवार, वास्तविक आत्मा का हम कैसे पता लगावें और पावें ? गत सप्ताह के व्याख्यानों में प्रायः हर दिन इस प्रश्न के उत्तर दिये गये थे। आज हम एक दूसरी ही विधि से, पाप की विचित्र घटना से इस प्रश्न का उत्तर देंगे। पापका मूल क्या है ? पापने इस संसार में कैसे प्रवेश किया ? जो समझौता दिया जायगा वह उल्टा समझ पड़ेगा, विलक्षण, चौंकानेवाला समझ पड़ेगा। किन्तु चकित मत होइये। प्रकट में यह आश्चर्य में डालने वाला समझौता भी स्वयं आपकी बाइबिल के उपदेशों से सर्वथा संगत साबित किया जा सकता है, जिस बाइबिल को यूरोपीय लोग उस तरह नहीं समझ सकते जिस प्रकार भारतवासी, क्योंकि ईसा एशिया का है, और यह भी दिखाया जा सकता है कि वह भारत का भी है। बाइबिल के सब रूप की और अलंकारों की हिंदू शास्त्रों ही में बारम्बार आवृत्तियां हुई हैं। इस से हिन्दू, एशिया के लोग, उस प्रकार की लेख शैली के अभ्यासी होने के कारण,पाश्चात्य लोगों की अपेक्षा बाइबिल को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। और इस लिये अभी जो समझौता दिया जायगा वह जिन लोगों को अपने पोषित विचारों और अति पूज्य भावों के सर्वथा विपरीत और आश्चर्यजनक समझ पड़े उन्हें धीरज धरना चाहिये क्योंकि प्रगट में यह अद्भुत व्याख्या अन्त में स्वयं तुम्हारी बाइबिल के विरुद्ध नहीं है। पापकी समस्या पर आने के पूर्व हम कुछ प्रारम्भिक मामलों पर विचार करेंगे।

यह कैसी बात है कि, पैदा होने वाले हरेक को यद्यपि मरना पड़ेहीगा फिर भी लोग मृत्यु का विचार कभी नहीं कर सकते ? मृत्यु का विचार मात्र उनके शरीर कंपा देता है

और उनके शिर की चोटी से पैर के अंगूठे तक में थरीहट पैदा कर देता है। हम कहते हैं, यह क्या बात है कि, भूत काल में जितने महाराजा हुए सब चल बसे, सब महात्मागण भी जो मृतकों को उनके शरीरों को फिर उठा कर खड़ा करते थे, मृत्यु को प्राप्त हुए। वे मुर्दों को जिन्दा करते थे पर उनके शरीर भी मुर्दा हैं। हम देखते हैं कि, भूत काल के सब धनाढ्य पुरुष, भूतकाल के सब बलाढ्य पुरुष मर गये हैं। और बौद्धिक विचार-बिन्दु से हमें निश्चय है कि, देर या सबेर हमारे शरीर भी अवश्य मरेंगे। तुम चाहे सत्तर वर्ष तक जीते रहो, नहीं, उसको दूनी, चौगुनी अवस्था तक के हो जाओ परन्तु मरना अवश्य पड़ेगा। मौत से तुम नहीं बच सकते। यह सर्वथा निश्चित है। परन्तु महा विस्मयकर बात तो यह है कि, यह सब होते हुए भी कोई अमली रूप से अपनी मृत्युपर विश्वास नहीं कर सकता। हरेक मृत्यु के विचार से घृणा करेगा, मृत्यु आने की चिन्ता को न सहन करेगा। हरेक अपने साथियों से अपने सम्बन्धों को फैलाता जाता है, और अपने नातेदारों से नातेदारियां बढ़ाता रहता है, अपने कार्य क्षेत्र की वृद्धि का प्रसार करता रहता है, और इस तरह पर जिन्दगी बसर करता है। मानों मृत्यु उसे कभी न ग्रसेगी, उसकी मृत्यु होना असम्भव है। यह क्या बात है? मौत का नाम किसी से सुनते ही मनुष्य के सारे शरीर में बुखार चढ़ आता है। यह क्यों? एक ओर तो मृत्यु का आना अटल है, दूसरी ओर हम उसके विचार से भी भागते हैं, ठीक पक्षी की तरह, जो अपने पंखोंपर पानी पड़ते ही पानी को गिरा देता है। यह क्या बात है कि, हम मृत्यु पर व्यावहारिक विश्वास कदापि नहीं कर सकते? मौत का वर्णन करनेवाले गान आप भले ही गावें, परन्तु व्यावहार

में मौत पर विश्वास कभी नहीं कर सकते। कारण क्या है? वेदान्त इसकी व्याख्या करता हुआ कहता है कि, वास्तविक कारण आपके वास्तविक आत्मा की अमरता है। आपका वास्तविक आत्मा कभी नहीं मर सकता। जिस शरीर को मरना है,जो हर क्षण मृत्यु को प्राप्त हुआ करता है,-मृत्यु से हमें यहां परिवर्तन समझना चाहिये-जो हर क्षण बदल और मर रहा है, आपका सच्चा आत्मा नहीं है। आप में कोई ऐसी वस्तु है, जो कभी नहीं मर सकती। शरीर से आत्मा का, वास्तविक तत्त्व का संयोग है, जो कभी नहीं मर सकता। परन्तु आप कहेंगे कि, व्यावहारिक जीवन में, नित्य के जीवन में हम यह विश्वास नहीं करते कि, आत्मा कभी नहीं मरेगा, परन्तु हम यह विश्वास करते हैं कि, हमारे शरीर कभी न मरेंगे—विश्वास करते हैं कि हमारे शरीरों को अमर रहना चाहिये। हिन्दू धर्म का वेदान्त दर्शन कहता है, यद्यपि यह सत्य है कि, आत्मा को नहीं मरना है और शरीर को मरना है, परन्तु भूल से आत्मा के गुण, वास्तविक स्वयं या अहं का गौरव नश्वर शरीर को प्रदान किया जाता है। मूल में ही अविद्या है। यह विचार सार्वभौम है। यह सब कहीं, सब देशों में वर्तमान है। और पशु-जगत में भी यह वर्तमान है। इस विश्वास की सर्वव्यापकता को वेदान्त के सिवाय कोई दूसरा तत्त्वज्ञान नहीं समझाता। इस विश्वास की सार्वभौमिकता का तथ्य है, और इस तथ्य समझाना जाना चाहिये जो तत्त्वज्ञान प्रकृति के सब तथ्यों को नहीं समझाता वह तत्त्वज्ञान ही नहीं है। अधिकांश तत्त्वशास्त्रों की भांति वेदान्त इस तथ्य को बेसमझाये नहीं छोड़ देता। कारण आन्तरिक होना चाहिये। बाहरी कारणों का प्रमाण देने के दिन गये। एक आदमी गिर

पड़ता है, उसके गिरने का कारण उसी के भीतर दिखाना होगा। वह कह सकता है, जमीन फिसलौंद थी, या इसी तरह की कोई और बात। किन्तु कारण घटना में ही दिखाना होगा, उससे बाहर नहीं। और यदि स्वयं घटना में हेतु की प्राप्ति हो सकती हो तो बाहरी कारणों में जाने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अमरता में व्यावहारिक विश्वास को आप ऐसे कारण से किस प्रकार समझा सकते हैं जो भीतरी हो न कि बाहरी? शरीर में हम ऐसी कोई बात नहीं पाते जो हमें यह विश्वास, अमरता का विश्वास, दे सके। मन में हम ऐसी कोई वस्तु नहीं पाते, जो यह विचार देनेवाली हो। चित्त से दूर जाओ, शरीर से दूर जाओ, और वेदान्त सच्ची आत्मा को बताता है, जिसका वर्णन किसी पिछले व्याख्यान में किया गया था। वही, साक्षी-प्रकाश अमर है, आज, कल्ह और सदा एक रस। 'अ-मृत्यु' में इस सार्वभौम विश्वास का कारण हमें उसमें मिल सकता है। और व्यावहारिक जीवन में की जाने वाली भूल है, जो गैलीलियो के समय से पूर्व समस्त मानव जाति ने की थी। पृथ्वी की गति सूर्य को प्रदान की जाती है। आत्मा की दैवी अमरता शरीर को प्रदान करने में आप भी वैसी ही भूल करते हैं।

अब प्रश्न होता है, अमर आत्मा और नश्वर शरीर हैं और उनके साथ है अज्ञान, विद्या का अभाव। यह अविद्या कहां से आई? अब हम देखते हैं कि, अविद्या मनुष्य में है, और वह दैवी आत्मा मनुष्य में है तथा शरीर भी मनुष्य में हैं। ये भीतरी चीजें हैं, इनमें से बाहरी कोई नहीं है, इनमें से आप के विषय से बाहर कोई नहीं है। और इनके, शरीर और चित्त तथा अमर आत्मा और अविद्या, कार्य से शरीर

की मृत्यु पर व्यावहारिक अविश्वास के चमत्कार के अस्तित्व की व्याख्या होती है।

पुनः, यह क्या बात है कि, इस संसार में कोई भी स्वतंत्र नहीं हो सकता, यद्यपि हरेक अपने को स्वतंत्र समझता है, स्वतंत्रता का विचार करता है, और स्वतंत्रता की इतनी इच्छा की जाती है। आप कहेंगे कि, मनुष्य स्वाधीन है। क्या तुम में अनेक अभिलाषायें, प्रलोभन, और विकार नहीं है? तो फिर आप अपने को स्वतंत्र कैसे कह सकते हैं? मीठे फल या स्वादिष्ट भोजन आप को गुलाम बना सकते हैं। कोई भी चित्ताकर्षक रंग तुरन्त आप को मन हर सकता है। मोहित कर सकता है, और आप को गुलाम बना सकता है। लौकिक अभ्युदय का कोई भी विचार आप को गुलाम बना सकता है, और फिर भी आप अपने को स्वतंत्र कहते हैं। ज़रा सूक्ष्मता से जांच कर देखिये कि, भला पूरी स्वाधीनता से आप मनमाना कोई काम कर सकते हैं? क्या यह बात नहीं है कि, आप के किसी मामले में कोई गड़बड़ होते ही आप का मिज़ाज बेकाबू हो जाता है आप क्रोध के गुलाम हैं, वृत्तियों के गुलाम हैं,। यह क्या बात है कि, वास्तव में लोग पूरे स्वतंत्र नहीं हो सकते, और फिर भी वे सदा स्वाधीनता का विचार स्वाधीनता की बात, चीत स्वाधीनता बड़ी मधुर है, अत्यन्त-वाञ्छनीय है, बहुत प्यारी है, करते रहते हैं?

भारत में रविवार स्वाधीनता का दिन है, और स्वाधीनता के विचार के द्वारा बच्चों को सप्ताह के दिनों की शिक्षा दी जाती है। हर दिन वे अपनी माताओं से पूछते हैं, आज कौन दिन है? वे उनसे बताती है, आज सोम, मंगल या

बुध है। फिर वे अपने पोरों पर मंगल, बुध इत्यादि गिनना शुरू करते हैं, अरे! इतवार कब आवेगा?

पृथ्वीतल पर इतना खून क्यों गिरता है? स्वतंत्रता, स्वाधीनता के विचार के कारण। वह कौनसा विचार था जिसकी प्रेरणा से अमेरिकनों ने उससे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया जिसे वे अपनी मातृभूमि कहा करते थे? यह क्या था? स्वाधीनता का विचार था। और प्रत्येक धर्म का उद्देश्य क्या है? हमारी संस्कृत भाषा में मोक्ष शब्द है जिसका अर्थ है मुक्ति, स्वाधीनता, स्वतंत्रता। अरी स्वाधीनता, स्वाधीनता, स्वाधीनता! प्रत्येक मनुष्य मधुर स्वाधीनता का भूखा और प्यासा है। और फिर भी ऐसे आदमी कितने हैं, जो वास्तव में स्वाधीन हैं? बहुत थोड़े।

वेदान्त कहता है, इस जगत में आप हर घड़ी कारागार में बन्द हैं, जिस कारागार में तेहरी दिवालें हैं—काल की दीवाल, दिशा की दीवाल, और हेतु की दीवाल। जब आप का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कार्य हेतुता की शृंखला से स्थिर होता है, और आप उस जंजीर से बंधे हुए हैं, तो जब तक इस संसार में निवास कर रहे हैं तब तक स्वाधीन कैसे हो सकते हैं? फिर भी स्वाधीनता हरेक और सब की प्रिय वस्तु है। क्या यह विचित्र और विरोधाभास सा नहीं है? क्या यह वचन-विरोध नहीं जान पड़ता है? यह समझाओ।

वेदान्त कहता है, इसका भी कारण है, और कारण तुम्हारे अन्दर है, तुमसे बाहर नहीं है। तुममें स्वाधीनता का यह विचार, यह सार्वभौम विचार हमें बताता है कि, आपमें कोई चीज़ है, और आपमें वह कोई वस्तु, आपका सच्चा आत्मा, वास्तविक मुझे है, क्योंकि यह स्वाधीनता

आप मुझे के लिये, मैं के लिये, वास्तविक स्वयं के लिये चाहते हैं, और किसी दूसरे के लिये नहीं। आपमें ऐसी कोई वस्तु है, जो वास्तव में स्वाधीन, असीम, अबद्ध है। इस भाव की सार्वभौमिकता स्पष्ट भाषा में प्रचार करती है कि, वास्तविक स्वयं, वास्तविक आत्मा कोई पूर्ण स्वतंत्र वस्तु है। परन्तु उसी तरह की भूल के कारण, जो अज्ञानी लोग पृथ्वी की गति सूर्य पर आरोपित करने और सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर लाने में करते हैं—अविद्या के कारण गुणों का परस्पर परिवर्तन करते हैं—हम शरीर, मन, स्थूल आप के लिये स्वाधीनता की प्राप्ति करना चाहते हैं।

इस संसार में हम एक दूसरी अति विचित्र घटना देखते हैं। अपने क्षुद्र स्वयं की दृष्टि से प्रत्येक इस संसार में पापी है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी तरह किसी न किसी त्रुटि या कमी का जिम्मेदार है,और फिर भी अपने सच्चे हृदय से कोई भी अपने को पापी नहीं समझता है। इस विशाल विश्व में, पृथ्वीतल पर कोई भी, एक भी व्यक्ति अपनी प्रकृति पापिष्ट होने पर विश्वास नहीं करता। अपने आन्तरिक हृदय से वह अपने को शुद्ध समझता है। व्यावहारिक जीवन में कोई भी अपने को पापी नहीं समझता। ऊपर से यदि तुमने अपने को पापी पुकारा हो तो क्या हुआ। किन्तु तब भी वास्तविक लक्ष्य यही रहता है कि, लोग धर्मात्मा मनुष्य समझें। परन्तु अपने अन्तरतम हृदय में उन्हें अपनी प्रकृति के पापमय होने पर कुछ भी विश्वास नहीं होता। हरेक अपने विचार से शुद्ध है। न्यायालय में प्रश्न होने पर "तुमसे पाप हुआ" घोर पापी और अपराधी कदाचित ही कभी कहते हैं "हां, हमसे पाप बन पड़ा"। यदि

लाचार होकर उन्हें पापाचार स्वीकार करना पड़ता है तो मामले में कोई दूसरा ही पेंच होता है। यद्यपि बाहर से वे अपने पापकर्म को स्वीकार करते हैं तथापि अपने हृदयों में वे अपनी स्वीकारोक्ति को गलत समझते हैं। उन्होंने कोई पाप नहीं किया। यह कैसी बात है? जो लोग देवालय में पुरोहित के सामने अपने पापों को कबूलते हैं उन्हें भी सड़क पर यदि कोई चोर के नाम से पुकारता है तो वे पलट पड़ते हैं और उस पर मुकदमा चलाते हैं, अभियोग लगाते हैं और न्यायालय से दण्ड दिलवाते हैं। केवल ईश्वर के सामने, देवालय में उन्होंने परमात्मा के लोचनों में धूल झोंकने की चेष्टा की थी। केवल देवस्थान में उन्होंने अपने पाप स्वीकार कर अपने को पापी कहा था।

यह अद्भुत घटना भी प्रकट करती है कि, इस संसार में कितनी बेहूदगी है। यह बेढंगापन कैसे दूर होगा? वेदान्त कहता है,हम पापी नहीं है और हम पाप से बहुत परे हैं,इस विचार को निर्मूल कर सकने की हमारी असमर्थता और अपनी प्रकृतियों के निष्पाप होने में हमारे व्यावहारिक विश्वास की सर्वव्यापकता ही इस बात के जीते जागते प्रमाण तथा लक्षण हैं कि, वास्तविक आत्मा की प्रकृति निष्पाप है, सच्ची आत्मा, वास्तविक जीवात्मा स्वभाव से पापहीन, शुद्ध, पवित्र है। वास्तविक तत्त्व, वास्तविक आत्मा, निष्पाप,विशुद्ध,परम पुनीत है। यदि आप इस व्याख्या को नहीं मानते, तो इस प्रकट विरोध की किसी दूसरी तरह से व्याख्या कीजिये।

यह कैसी बात है कि, हरेक बुद्धि से जानता है कि वह संसार का सब धन नहीं सञ्चय कर सकता है, यथेच्छ

धनी नहीं हो सकता है ? यह हम नित्य ही अपने मध्य में देखते हैं । जो लोग करोड़पती प्रसिद्ध हैं उनसे जाकर पूछिये कि, क्या वे संतुष्ट और तृप्त हैं ? यदि वे जी खोल कर आपसे बात करेंगे तो कहेंगे कि, हम संतुष्ट नहीं हैं, तृप्त नहीं हैं । वे और अधिक, और अधिक, और अधिक धन चाहते हैं । उनके हृदय भी उतने ही स्वच्छ हैं जितने कि उनके, जिनके पास चार डालर (अमेरिकन रुपया) है । मन की शान्ति, संतोष, और विश्राम के लिये चार रुपये और चार अरब रुपये में कुछ भी अन्तर नहीं है । ये काम धन के नहीं हैं । यदि धनी होते हुए भी लोग संतुष्ट हैं, शान्त हैं, तो शान्ति का कारण दौलत नहीं है । किन्तु उस शान्ति का कारण अवश्य ही कुछ और है, अवश्य ही उसका कारण अनजाने वेदान्त का व्यवहार है और कुछ नहीं । उनकी शान्ति का कारण एक मात्र वही (वेदान्त का व्यवहार) हो सकता है, क्योंकि ऐश्वर्य में अपने स्वामी को प्रसन्न करने की कोई शक्ति नहीं है ।

हमें निश्चय है कि दौलत के सञ्चय से, भौतिक सम्पत्ति से शान्ति की प्राप्ति नहीं होती, और फिर भी प्रत्येक मनुष्य अर्थ का भूखा है, अर्थ के लिये छटपटा रहा है । क्या यह विचित्र 'नियमविरुद्धता नहीं है ? इसे समझाइये । कोई भी तत्वज्ञान या धर्म इसे पूरे तर्कों से या युक्तिपूर्वक नहीं समझाता । वेदान्त कहता है, यह देखो, सम्पत्ति के लिये, सब कुछ बटोरने और सञ्चय करने के लिये हाय २ मची हुई है । यह क्यों ? शरीर समस्त संसार का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता । यदि सारा संसार भी आपके अधिकार में आजाय तो भी आपको संतोष न होगा, आप

चन्द्रलोक पर अधिकार होने की बात सोचने लगेंगे। सारे संसार के शासक सम्राटों का, रोम के सम्राटों का ख्याल कीजिये। उन नीरो-गण का ध्यान कीजिये। क्या आपके रोमाञ्च नहीं होता? उन कैसरों और नीरो-गण की, उनकी मानसिक अवस्थाओं का विचार कीजिये। क्या वे सुखी थे? क्या वे संतुष्ट थे? उनमें से एक खाता है, वह खाने का शौकीन है, और हर घड़ी एक से एक स्वादिष्ट भोजन उसके लिये तैयार रहते हैं। वह एक पदार्थ जी भर के खाता है और अब उसके पेट में जगह नहीं है। उसके पास वमन करने की औषधियां हैं और वह अभी खाया हुआ पदार्थ क़ै कर देता है। अब दूसरे पदार्थ उसके पास लाये जाते हैं और वह फिर इच्छा भरके खाता है। यह सब केवल रुचि की तृप्ति के लिये। इस तरह वह समस्त दिन खाता और वमन करता रहता है। क्या वह तृप्त हुआ? क्या उसे शान्ति मिल गई? नाम मात्र को भी नहीं। हमें इसका निश्चय है। नहीं, सम्पूर्ण संसार के अधिकारी हम नहीं बन सकते, और यदि बन भी जाँय तो भी क्या परिणाम? सम्पूर्ण संसार को प्राप्त कर यदि आपने अपनी आत्मा खोदी तो क्या फल हुआ? ज्योतिषविद्या विषयक गणनाओं में स्थिर नक्षत्रों से हमारे व्यवहार के समय आप की यह पृथ्वी एक बिन्दु मात्र होती है। यह पृथ्वी गणितशास्त्रीय परिमाणरहित बिन्दु मात्र समझी जाती है।

आपकी यह पृथ्वी, यह क्या है? इस पृथ्वी पर अधिकार होने से वास्तविक तृप्ति, वास्तविक शान्ति कैसे मिल सकती है? यद्यपि बौद्धिक पक्ष से हम यह जानते हैं तथापि इस ऐश्वर्य के पीछे बिना झपटे हम नहीं मान सकते। वेदान्त

कहता है, इसका कारण यही है कि, आपमें वास्तविक आत्मा, आप में वास्तविक मुझे वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है। इसी कारण से तुम अपने को सारे संसार का मालिक देखना चाहते हो।

भारत में एक महाराज की कथा प्रचलित है, जो अपने पुत्र द्वारा कारागार में डाल दिया गया था। उसका पुत्र सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनने का अभिलाषी था, इसी लिये वह कैदखाने में बन्द किया गया था। पुत्र ने अपनी धन की भूख बुझाने के लिये पिता को जेलखाने भेजा था। एक बार पिता ने अपने ही पुत्र को कुछ विद्यार्थी भेज देने को लिखा ताकि विद्यार्थियों को पढ़ाकर वह अपना मनोरञ्जन कर सके। इस पर पुत्र ने कहा, "इस मनुष्य, मेरे पिता को सुनते हो? वह इतने वर्षों तक साम्राज्य का शासन करता रहा है और अब भी हुकूमत करने की अपनी पुरानी आदत उससे नहीं छोड़ी जाती। वह अब भी विद्यार्थियों पर शासन करना चाहता है, कोई न कोई उसे शासन करने के लिये चाहिये। वह अपनी पुरानी आदतें नहीं त्याग सकता"।

यही बात है। हम अपनी पुरानी आदतें कैसे त्याग सकते हैं? पुराना अभ्यास हममें चिपटा रहता है। हम उसे दूर नहीं कर सकते। आपका वास्तविक आत्मा,सम्राट शाहजहाँ(इस शब्द का अर्थ है,'सारे संसार का शासक', और इस प्रकार उस सम्राट के नाम शाहजहां का अर्थ है, सम्पूर्ण विश्व का सम्राट), विश्व ब्रह्माण्ड का सम्राट है। अब आपने सम्राट को एक बन्दीखाने में, अपने शरीर की अन्धी कोठरी में, अपने क्षुद्र स्वयं की हदबन्दी में डाल रक्खा है। वह वास्तविक आत्मा, विश्व का वह सम्राट अपने पुराने

अभ्यासों को कैसे भूल सकता है ? वह अपने स्वभाव को कैसे त्याग सकता है ? किसी में भी अपनी प्रकृति को दूर कर देने की शक्ति नहीं है । इसी प्रकार आत्मा, सच्चा स्वयं, आपमें वास्तविक वास्तविकता अपने स्वभाव को कैसे छोड़ सकती है ? आपने उसे कारागार में अवरुद्ध कर रक्खा है, किन्तु कारागार में रहती हुई भी वह सारे संसार पर अधिकार करना चाहती है, क्योंकि समग्र उसका था । वह अपनी पुरानी आदतों को नहीं छोड़ सकती । यदि आप चाहते हैं कि, आकांक्षा का यह भाव, यह लोभ दूर होजाना चाहिये, यदि आपकी इच्छा है कि इस संसार के लोगों का वह लिप्सा-भाव जाता रहे, तो क्या आप उन्हें ऐसा करने का उपदेश दे सकते हैं ? असम्भव ।.

कुछ कटु बातें कहने के लिये आप राम को क्षमा करें, परंतु सत्य कहना ही होगा। राम सत्य का व्यक्तियों से अधिक आदर करता है । सत्य कहना ही चाहिये । बाइबिल में मैथ्यू के पांचवें अध्याय में, 'माउण्ट' पर 'सर्मन' (पहाड़ी पर उपदेश) में कहा गया है, "यदि आप के एक गाल पर कोई थप्पड़ जमावे तो दूसरा भी उसकी ओर कर दीजिये ।" जब अब आपको पवित्र सिद्धान्तों का प्रचार करना हो तब अपने पास धन न रखिये, नंगे पैर, नंगे सिर जाना चाहिये। यदि न्यायालय में आप बुलाये जाँय तो जाने के पहले यह न सोचिये कि, आपको क्या कहना पड़ेगा । अपना मुँह खोलिये और वह भर जायगा । उद्यान के फूलों और वन के पक्षियों को देखिये । वे दूसरे दिन का कोई विचार नहीं करते, परन्तु कोकावेलियों और गरगैयों को ऐसे वस्त्र पहनने को मिलते हैं कि सालोमन भी स्पर्धा करे । क्या आपकी बाइबिल में यह

बयान नहीं है कि "ऊँट चाहे सुई के नाके से निकल जाय, परन्तु धनी के लिये स्वर्ग के राज्य की प्राप्ति असम्भव है।" क्या आपने बाइबिल में नहीं पढ़ा है कि, "एक धनी आदमी ने आकर क्राइस्ट से दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की और क्राइस्ट ने कहा, "तुम्हारे लिये एक ही उपाय है,दूसरा कोई नहीं। अपनी सब दौलत तुम त्याग दो। इतना करने ही से तुम्हें शान्ति मिल सकती है"। त्याग का यह भाव, यह अध्याय, जो कम से कम भारत में, और सारे संसार में, धर्म-प्रचारकों (मिशनरियों) द्वारा बहुत पीछे रक्खा जाता है, यह अध्याय वेदान्त की और उन उपदेशों की शिक्षा देता है जिनका पालन आज भी भारतीय साधु करते हैं। उस पवित्र धर्म के नाम में, त्याग की उस शिक्षा के नाम में ज़रा उन लोगों पर ध्यान दीजिये जो भारत में आचार्य और धर्म-प्रचारकों की हैसियत से जाते हैं। राम को आप क्षमा करें यदि आप आत्मा को शरीर में समझते हैं। तो किसी को रुष्ट न होना चाहिये। किसी को ज़रा सा भी रुष्ट होने का अधिकार नहीं है, यदि उसके तुच्छ शरीर के विरुद्ध कुछ कहा जाता है।

क्या यह विस्मय की बात नहीं है कि, त्याग के नाम पर भारतवर्ष जानेवाले लोग गद्दियों पर नित्य आराम करें, शानदार महलों में रहें, और बारह चौदह सै रुपये महीने तनख़ाह लेकर राजसी ठाठ से रहते हुए कहें कि, हम त्याग के धर्म का प्रचार और उपदेश करते हैं? यह विचित्रता नहीं है? वेदान्त कहता है कि, मञ्च से किसी प्रकार की शिक्षा या प्रचार के द्वारा आप संचय और प्रत्येक वस्तु के अधिकारी बनने के विचार का दमन नहीं कर सकते। तुम

इसका दमन नहीं कर सकते। क्योंकि अपने वास्तविक आत्मा का सार्वभौम राजत्व, विश्वव्यापी सम्राटत्व तुम नाश नहीं कर सकते। किन्तु क्या यह रोग असाध्य है? क्या इस रोग की कोई औषधि, कोई प्रतिकार नहीं है? है, है। विभीषिका का कारण अज्ञान है जिस अज्ञान के कारण आप आत्मा का गौरव शरीर पर आरोपित करते हैं और, दूसरी ओर, शरीर के क्लेश को आत्मा पर आरोपित करते हैं। इस अज्ञान को दूर करो और निर्धन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हें समृद्धिशाली दिखाई पड़ेगा, और सम्पति या भूमि से हीन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हें सम्पूर्ण संसार का महाराज दिखाई पड़ेगा। जब तक अविद्या वर्तमान है तब तक आप में लोभ और आकांक्षा रहे हीगी। इसका कोई उपाय नहीं है, कोई इलाज नहीं है। इस ज्ञान को प्राप्त करो, इस दैवी बुद्धिमत्ता को प्राप्त करो, और आत्मा को बन्धनमुक्त करो, उसे कैदखाने से तुरन्त निकालो। उसे स्वाधीन करो। इसका आशय यह है कि, अपना सच्चा, नित्य, अनन्त आत्मा का, जो ईश्वर है, स्वामी है, विश्व का शासक है, अनुभव करो। यह अनुभव करो, तुम पवित्रों में पवित्र हो, महापवित्र हो, और लौकिक वसुधा या सांसारिक ऐश्वर्य के विचार को स्थान देना भी आप को पापकर्म तथा अपमानजनक समझ पड़ेगा।

संसार के उन सब देशों को जीतने के बाद, जो उसे ज्ञात थे, जब सिकन्दर भारत गया तो उसने विलक्षण भारतवासियों को, जिनकी चर्चा उसने बहुत सुनी थीं, देखने की इच्छा प्रकट की। सिंधु नदी के तटपर किसी साधु या आचार्य के पास लोग उसे ले गये। साधु बालू पर

नंगे-सिर, नंगे-पैर, नंगे-बदन पड़ा हुआ है, और यह भी पता नहीं कि कलह भोजन उसे कहां से मिलेगा। इस दशा में पड़ा हुआ वह घाम खा रहा है। महान (आज़म) सिकन्दर उसके निकट अपने पूरे गौरव से युक्त खड़ा हुआ है, ईरान से उसने जो ज्वाज्वल्यमान रत्न और हीरे पाये थे उनसे जटित उसका मुकुट चमचमा रहा है, प्रकाश फैला रहा है। उसके निकट था विवस्त्र साधु। कितना अन्तर है, कितना भेद है! एक ओर तो सारे संसार के वैभव का प्रतिनिधि-स्वरूप सिकन्दर का शरीर है, और दूसरी ओर सारी गरीबी का प्रतिनिधि महात्मा है। किन्तु उनकी सच्ची आत्माओं की गरीबी या अमीरी के यथार्थ ज्ञान के लिये केवल उनके मुखमण्डलों की ओर आपके देखने की ज़रूरत है।

भाइयों और बहनों! अपने घावों को छिपाने के हेतु तुम ऐश्वर्य के लिये हाय २ करते हो, उन्हें (घावों को) ढकने के लिये तुम पट्टी बांधते हो। यहां एक साधु है, जिसकी आत्मा धनाढ्य थी, यहां एक साधु है, जिसे अपनी आत्मा की अमीरी और गौरव का अनुभव हो गया था। उसके पास महान सिकन्दर खड़ा था, जो अपनी आन्तरिक दीनता को छिपाना चाहता था। महात्मा के प्रभापूर्ण, प्रसन्न, आनन्दमय चेहरे की ओर देखिये। महान सिकन्दर उसकी सूरत से चकित हो गया। वह उस पर आसक्त हो गया और उसने महात्मा से यूनान चलने को कहा। साधु हँसा, और उसने उत्तर दिया, "संसार मुझ में है। मैं संसार में नहीं आ सकता। विश्व मुझ में है, मैं विश्व में नहीं अवरुद्ध हो सकता। यूनान और रूम मुझ में है। सूर्य और

नक्षत्र मुझ में उदय और अस्त होते हैं।"

महान सिकन्दर इस प्रकार की भाषा का अभ्यासी न होने के कारण विस्मित हुआ। उसने कहा, "मैं तुम्हें धन दूँगा। सांसारिक सुखों से मैं तुम्हें डुबा दूँगा। सब तरह के पदार्थ, जिनकी लोग इच्छा करते हैं, सब तरह के पदार्थ, जो लोगों को मोहते और अपना दास बनाते हैं, बहुलता से तुम्हें प्राप्त होंगे। कृपया मेरे साथ यूनान चलिये।"

महात्मा हँसा, उसके उत्तर पर हँसा और बोला, "ऐसा कोई हीरा या सूर्य या नक्षत्र नहीं है, जिसके प्रकाश का कारण मैं नहीं हूँ। सम्पूर्ण स्वर्गीय वस्तुओं के गौरव का कारण मैं हूँ। समस्त इच्छित वस्तुओं की मोहनी, चित्ताकर्षक शक्ति मुझ से है। पहले तो इन पदार्थों को गौरव और मनोहरता मैं ने प्रदान की, और अब इन्हें ढूंढ़ता फिरूँ, सांसारिक धनिकों के द्वारों पर मांगता फिरूँ, सुख और आनन्द पाने के लिये पाशविक वृत्तियों और स्थूल शरीर के दरवाज़ों पर हाथ फैलाऊँ, यह मेरी मर्यादा के विरुद्ध है, मेरे लिये अपमानजनक है। यह मेरी शान के ख़िलाफ़ है। मैं इतना नीचा कभी नहीं झुक सकता। नहीं, मैं उनके द्वारों पर जाकर हाथ नहीं पसार सकता।"

इससे महान सिकन्दर आश्चर्य में पड़ गया। उसने अपनी तलवार खींचली और साधु का सिर उड़ा देना ही चाहता था। अब तो साधु ठठा कर हँसा और बोला, "ऐ सिकन्दर। तूने अपने जीवन में इतनी झूठी बात कभी नहीं कही, ऐसा घृणित मिथ्यालाप कभी नहीं किया। मेरा वध, मेरा वध, मेरा वध! वह तलवार कहां है जो मुझे मार सकती है ? वह कौन सा अस्त्र है, जो मुझे घायल कर

सकता है ? ऐसी कौन सी विपत्ति है, जो मेरी प्रसन्नता को नष्ट कर सकती है ? वह कौन सा रंज है जो मेरे आनन्द में विघ्न डाल सकता है ? नित्य, आज, कल्ह और सदा एक-रस, पवित्र और शुद्ध। मैं शुद्ध, विश्व-ब्रह्माण्ड का प्रभु, मैं वही हूँ, मैं वही हूं। ऐ सिकन्दर ! जो शक्ति तुम्हारे हाथों को चलाती है वह मै ही हूँ। तुम्हारे शरीर के मर जाने पर भी मैं, वही शक्ति, जो तुम्हारे हाथों को चलाती है, बना रहता हूँ। मैं ही वह शक्ति हूँ, जो तुम्हारी नसों को हरकत देती है।" सिकन्दर के हाथ से तलवार छूट पड़ी।

इससे हमें पता चला चलता है कि, त्याग के भाव का लोगों को अनुभव कराने का केवल एक ही उपाय है। लौकिक दृष्टि से हम तभी सर्वस्व त्यागने को तैयार होते हैं जब दूसरी दृष्टि से हम धनी हो जाते हैं। गरीबी में जो कुछ मिलता है वह टिकाऊ होता है। क्या आपने अशंकनीय वैज्ञानिक नियम नहीं सुना ? बाहरी हानि, बाहरी त्याग की प्राप्ति तभी होती है जब भीतरी पूर्णता, आन्तरिक स्वामित्व या सम्राटत्व की प्राप्ति होती है। और कोई उपाय नहीं है, दूसरा उपाय नहीं है।

इस संसार में क्रोध का अस्तित्त्व क्यों है ? हम नित्य बड़े २ उपदेश सुनते हैं कि, हमें क्रोध कभी न करना चाहिये, निर्बलता को कभी न पास फटकने देना चाहिये। इस आशय के उपदेश हम नित्य सुनते हैं, तथापि जब अवसर पड़ता है तब हम दब जाते हैं। ऐसा क्यों है ? क्रोध, द्वेष, अपनी उन्नति, तथा अन्य पाप क्यों है ? इन सब पापों की व्याख्या भी वेदान्त उसी प्रणाली और सिद्धान्त पर करता है। इन सब पापों पर ब्यौरेवार विचार करने का शायद

समय नहीं है। यदि आप इस सम्बन्ध में अधिक जानना चाहते हैं तो राम के पास आइये, सब पापों का कारण और निदान भली भांति समझा दिया जायगा। परन्तु अब समय बहुत थोड़ा रह गया है, इस लिये राम सब का सारांश कहेगा। और आपका ध्यान इस तथ्य की ओर खींचा जाता है कि, इन सब पापों का कारण अविद्या है, जिसके कारण आप वास्तविक स्वयं और स्थूल शरीर तथा चित्त को एक कर देते हैं। इस अज्ञान को त्यागो और इन पापों का कहीं पता भी न होगा। यदि इन पापों को आप और किसी उपाय से दूर करना चाहेंगे तो आपका प्रयत्न अवश्य असफल होगा, क्योंकि कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं किया जा सकता। अज्ञान का निस्सन्देह नाश किया जा सकता है। अविद्या को हम हटा सकते हैं। जन्म लेने पर बच्चे इस संसार की अनेक बातों से अनभिज्ञ होते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि, क्रमशः अनेक विषयों के सम्बन्ध में उनकी अज्ञानता घटती जाती है। केवल अज्ञान दूर किया जा सकता है।

इस दशा में, एक शक्ति ऐसी है जो आपको कुपित करती है, जो आपमें आकांक्षायें पैदा करती है, पाप करवाती है, और जिसकी प्रेरणा से आप धनसञ्चय करते हैं। आप अपने उपदेशों और शिक्षाओं से इस शक्ति को किसी तरह नहीं मिटा सकते। तुम दमन नहीं कर सकते, तुम इसे कदापि दबा नहीं सकते, क्योंकि शक्ति वहां है। वेदान्त कहता है, हम इस शक्ति को आत्मा बना सकते हैं। इसका दुरुपयोग न कीजिये। इससे उचित काम लीजिये। आप में जो सच्ची आत्मा है, जो बेजोड़ है, जो समग्र संसार की मालिक है, उसी की यह शक्ति है।

हरेक स्वाधीन होना चाहता है। और स्वाधीनता के भाव का, स्वाधीनता की आकांक्षा का प्रधान लक्षण, मूल रूप क्या है? वह है उस ऊँचाई पर उठना, जहां कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। सच्ची आत्मा चाहती है कि, आप उस अवस्था को प्राप्त करें जहां आपको पूरी स्वाधीनता है, अर्थात् जहां आपका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। जहाँ आपकी बराबरी का कोई नहीं है। आत्मा, सच्ची आत्मा का कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। यदि सांसारिक स्वार्थपरता या आत्मोन्नति के विचार से आप पीछा छुटाना चाहते हैं तो आप असली शक्ति को हटा और नाश नहीं कर सकते। किसी भी शक्ति का नाश नहीं किया जा सकता। न नित्य आत्मा का ही विनाश किया जा सकता है। प्रत्येक वस्तु का आप दुरुपयोग कर सकते हैं और स्वर्ग को नरक बना सकते हैं।

एक पादड़ी, इंग्लैंड के ईसाई पादड़ी की कहानी है। कुछ महापुरुषों, बड़े वैज्ञानिकों, डार्विन और हक्सले की मौतों का हाल उसने पढ़ा। वह अपने मन में विचारने लगा कि वे स्वर्ग गये या नरक। वह विचार में मग्न हो गया। उसने अपने मन में कहा, "इन लोगों ने कोई पाप नहीं किये, परन्तु इन्हें बाइबिल पर, ईसा पर विश्वास नहीं था, और यथार्थ में ये ईसाई नहीं थे। ये अवश्य नरक गये होंगे।" परन्तु इस विचार पर वह दृढ़ न हो सका। वह सोचता है, "वे अच्छे लोग थे, संसार में उन्होंने कुछ अच्छा काम किया, वे नरक के पात्र नहीं थे। तो फिर वे कहां गये?" वह सो गया और एक अत्यन्त अद्भुत स्वप्न देखा। उसे स्वप्न हुआ कि, वह स्वयं मरा और श्रेष्ठ स्वर्ग में पहुंचाया गया। वहां उसे वे सभी दिखाई पड़े जिन्हें पाने की उसने

आशा की थी, जो ईसाई भाई उसके गिर्जे में आते थे वे सब उसे दिखाई पड़े। उनसे उसने इन वैज्ञानिकों, हक्सले और डार्विन के सम्बन्ध में पूछा। स्वर्ग के द्वारपाल या किसी अन्य प्रबन्धक ने कहा, वे घोरतम नरक में हैं।

अब इस आचार्य (पादड़ी) ने पूछा, केवल उन्हें देखने और पवित्र बाइबिल की शिक्षा देने तथा यह बताने के लिये कि बाइबिल की आज्ञाओं पर विश्वास न करके उन्होंने घोर पाप किया, क्या क्षण भर के लिये मुझे घोरतम नरक में जाने की अनुमति मिल सकती है? कुछ वाद-विवाद के बाद प्रबंधक ढीला पड़ा और आचार्य के लिये घोरतम नरक का प्रवेश-पत्र ला देना स्वीकार किया। आप को आश्चर्य होगा कि, स्वर्ग और नरक में भी आप अपनी रेलगाड़ियों में आते जाते हैं, पर बात यही है। उस मनुष्य का पालन-पोषण ऐसे स्थान में हुआ था जहां रेल-व्यापार और तार की भरमार थी। अतएव, यदि उसके विचारों में, उसके स्वप्नों में नरक और स्वर्ग से रेलों का मेलजोल हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं।

अच्छा, इस पुरोहित को पहले दरजे का टिकट मिला। रेलगाड़ी चली ही जा रही है। बीच में कुछ स्टेशन थे, क्यों कि सर्वोच्च स्वर्ग से निम्नतम नरक को उसे जाना था। बीच के स्टेशनों पर वह ठहरा और देखा कि, ज्यों २ नीचे उतर रहा हूँ त्यों २ दशा बिगड़ती ही जाती है। जब वह उस नरक में पहुंचा जहां से सब से नीचा नरक सिर्फ दूसरा था तो वह अचेत होगया। ऐसी घोर दुर्गन्ध आ रही थी कि, यद्यपि सारे रुमाल और अंगोछे उसने अपने नथुनों में लगा लिये फिर भी वह बेहोश हो ही गया, उसे मूर्छा आ गई। नीचे

इतने अधिक लोग हाय २ कर रहे थे, रो और चिल्ला रहे थे, दांत कटकटा रहे थे कि, वह सह न सका। इन दृश्यों के कारण वह अपनी आंखें खुली न रख सका। सब से नीचे का नरक देखने के अपने आग्रह के लिये वह पछताने लगा।

कुछ ही मिनटों में यात्रियों के सुभीते के लिये रेल के चौंतरे (प्लैटफार्म) पर लोग चिल्ला रहे थे, "सब से नीचा नरक, घोरतम नरक"। स्टेशन की दीवालों पर खुदा हुआ था, "सब से नीचा नरक"। किन्तु पुरोहित विस्मित हुआ। उसने सब से पूछा, "यह घोरतम नरक कैसे हो सकता है? यह स्थान दिव्यतम स्वर्ग के लगभग होगा। नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह स्वर्ग है"। रेल का रक्षक (गार्ड) या संचालक ने उससे कहा, "यही स्थान है," और एक आदमी ने आकर कहा, "महाशय, उतर पड़िये, आपका निर्दिष्ट स्थान यही है।"

वह बेचारा उतर तो पड़ा परन्तु बड़ा चकित हुआ। उसने आशा की थी कि, सब से नीचा नरक सब से नीचे से एक को छोड़ कर पूर्ववाले से बुरा होगा। किन्तु यह तो उसके सर्व श्रेष्ठ स्वर्ग के प्रायः समान था। वह रेल के स्टेशन से बाहर निकला और सुन्दर बगीचे देखे, जिनमें सुगन्धित पुष्प खिले हुए थे, और शीतल मन्द-सुगन्ध पवनके झकोरे उसके लगने लगे। उसे एक लम्बा भद्रपुरुष मिला। उसका नाम उसने पूछा, और सोचा कि इस आदमी को तो पहले भी मैं देख चुका हूं। वह आदमी उसके आगे जा रहा था और पुरोहित पीछे २। जब वह मनुष्य बोला तो पुरोहित प्रसन्न हुआ। दोनों ने हाथ मिलाये और पुरोहित ने उसे पहचान

लिया। यह कौन आदमी था ? यह हक्सले था। उसने पूछा " यह कौन स्थान है, क्या यही निम्नतम स्वर्ग है ? " हक्सले ने उत्तर दिया, "हां, यही है"। तब उसने कहा, "मैं तुम्हें उपदेश देने आया था, परन्तु पहले यह बताओ कि, यह बात क्या है कि, ऐसा चमत्कार मैं देख रहा हूँ"। हक्सले ने कहा, "महा भीषण अवस्थाविषयक तुम्हारा अनुमान अनुचित नहीं था। वास्तव में जब हम यहां आये थे तो यही विश्व-ब्रह्माण्ड का अति रौरव नरक था। इससे अधिक अवांछनीय की धारणा नहीं हो सकती थी"। और उसने कुछ स्थानों को दिखाकर कहा, "ये गन्दी खाइयां थीं"। दूसरे स्थल को दिखाकर उसने कहा, "यहां गरम बालू थी, और यहां बहुत बदबूदार गोबर था"। एक और स्थान को दिखा उसने कहा, "यहां जलता लोहा था"।

उसने कहा, "पहले हम अत्यन्त गन्दी खाइयों में डाल दिये गये, परन्तु वहां रहते हुए हम पास के जलते हुए लोहे पर पानी फेंकते रहे। और नालों के मैले पानी को किनारों पर पड़े जलते हुए लोहों पर उलचने का काम हम करते रहे। तब घोरतम नरक के प्रबन्धकों को हमें उस स्थान पर लेजाना पड़ा जहां जलता हुआ तरल तेल था। किन्तु जब तक वे हमें वहां ले जाँय तब तक लोहे के बहुतेरे डंडे बिल-कुल ठंढे हो गये थे, बहुतेरे डंडे हथियाये जा सकते थे, परन्तु फिर भी बहुत सा लोहा तरल, जलती हुई अग्निमय दशा में था। तब जो लोहा बुझ कर ठंढा होगया था उसकी सहायता से और उसे आंच के सामने करके हम कुछ कलें और दूसरे औज़ार बनाने में समर्थ हुए।

"इसके बाद हमें उस तीसरे स्थान पर जाना था जहां

गोबर था। वहां हम पहुँचाये गये, और अपने औज़ारों, लोहे के फड़हों और कलों से हमने खोदने का काम शुरू कर दिया। तदुपरान्त हम दूसरे प्रकार की ज़मीन पर पहुँचाये गये और वहां अपने तैयार औज़ारों और कलों की सहायता से कुछ चीज़ें हमने उस जमीन पर फेंक दीं। इन्होंने खाद का काम दिया, और इस तरह धीरे २ हम इस नरक को सच्चा स्वर्ग बनाने में समर्थ हुए"।

बात यह है कि, घोरतम नरक में सब ऐसे पदार्थ वर्तमान थे, जो केवल अपने उचित स्थान पर रख दिये जाने ही से दिव्य स्वर्ग बना सकते थे। वेदान्त कहता है, यही बात है, तुममें परमेश्वर वर्तमान है, और तुममें निरर्थक शरीर मौजूद है, परन्तु तुमने वस्तुओं को स्थानभ्रष्ट कर दिया है। तुमने चीज़ों को ऊपर नीचे कर दिया है, तुमने उन्हें उलटा-पुलटा रख दिया है। तुमने गाड़ी को घोड़े के आगे रख दिया है। और इस तरह इस संसार को तुम अपने लिये नरक बनाते हो। तुम्हें न तो कोई वस्तु नष्ट करना है, और न कोई चीज़ खोदना है। अपनी इस आकांक्षामय भावना को अथवा इस स्वार्थपरता को, या अपनी इस क्रोध-वृत्ति को, या अपने किसी दूसरे दूषण को, जो ठीक स्वर्ग या नरक के तुल्य है, तुम नष्ट नहीं कर सकते, परन्तु तुम पुनः रचना कर सकते हो। किसी शक्ति का विनाश नहीं किया जा सकता। परन्तु इस नरक को तुम फिर से सजा सकते हो और इसे दिव्य स्वर्ग में बदल सकते हो।

वेदान्त कहता है, यही एक ऐसा जादू है जो कारागार के कपाट खोल सकता है, यही एक मात्र उपाय है संसार से सब संकट निकाल देने का—लटके हुए और मलिन चेहरों,

उदास तबीयतों से मामले नहीं सुधरते—सब पापों से बचने और किसी भी प्रलोभन में न फँसने का एक मात्र उपाय है सच्ची आत्मा का अनुभव (प्राप्त) करना। जब तक आप इस गौरव और महिमा को, जो आपको आकर्षित करती है, जो आप पर जादू डालती है, न नमस्कार कर लेंगे, तब तक आप पाशविक वृत्तियों को कदापि न रोक सकेंगे। जब आपको यह अनुभव हो जायगा, आप सब दुर्वृत्तियों से परे हो जाँयगे, और साथही बिलकुल स्वतंत्र, बिलकुल स्वाधीन हो जाँयगे, आनन्द से पूरी तरह परिपूर्ण हो जाँयगे। और यही स्वर्ग है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

(२० दिसम्बर १९०२ को 'एकडेमी आफ साइंसेज़' में इस व्याख्यान की दूसरी आवृत्ति की गई थी। दूसरी आवृत्ति के मार्के के वाक्य अगले पन्ने में " पाप के पूर्वलक्षण और निदान " शीर्षक से एक प्रकार से इस व्याख्यान के सिलसिले में हैं—सम्पादक।)

पूर्ववर्ती व्याख्यान के सिलसिले में।

पाप के पूर्वलक्षण और निदान।

[ता० २०-१२-१९०२ को एकेडेमी आफ साइंसेज-अमेरिका में दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान]

गंदली गढ़ैया में रहनेवाली चिड़िया के पखनों को छूने पर आपको मालूम होगा कि, वे सूखे हैं, पानी की रंगत या कीचड़ का उन पर नाम मात्र का भी असर नहीं पड़ा है, वे सूखे हैं। वे भीगते नहीं। वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य! इसी तरह तुझ में भी ऐसी कोई वस्तु है, जो निर्मल है जो शरीर के अपराधों, पापों, और दुर्बलताओं से दूषित नहीं होती"। इस दुष्टतामय और आलस्यपूर्ण संसार में यह (वस्तु) विशुद्ध रहती है। कौनसी गलती की जाती है? वास्तव में पापहीनता सच्चे स्वयं, आत्मा का गुण है, परन्तु भूल से व्यवहार में यह गुण शरीर पर आरोपित किया जाता है। शरीर और चित्त को शुद्ध समझने के इस भाव की उत्पत्ति कहां से हुई? लोगों के दिलों में इसे किसने जमाया? किसी दूसरे ने नहीं किसी दूसरे ने नहीं। कोई शैतान, कोई बाहरी पिशाच इसे आपके दिलों में जमाने नहीं आया। यह तुम्हारे भीतर है। कारण स्वयं कार्य में ही होना चाहिये। वे दिन बीत गये जब लोग अद्भुत घटना के कारण अपने से बाहर ढूढ़ते थे। किसी मनुष्य के गिर पड़ने पर, कारण प्रेत बताया जाता था। गिरने का कोई कारण मनुष्य से बाहर बतलाया जाता था। वे दिन गुज़र गये। विज्ञान और तत्त्व-विद्या को ऐसी व्या-

च्यायें मान्य नहीं हैं। स्वयं कार्य में हमें कारण ढूढ़ना चाहिये। हम जानते हैं कि, शरीर पापमय है, सदा अपराधी है, फिर भी हम अपने को निष्पाप समझते हैं। इस अद्भुत व्यापार की व्याख्या कैसे की जाती है? वेदान्त कहता है, "किसी बाहरी शैतान का आश्रय लेकर इसे मत समझाओ, बाहरी पिशाचों पर इसे आरोपित कर इसकी व्याख्या मत करो। नहीं, नहीं। कारण तुम्हारे अन्तर्गत है। शुद्धों में महाशुद्ध तुम्हारे भीतर है, निष्पाप भी तुम्हारे भीतर है। आत्मा जो अपने अस्तित्व का बोध कराती ही है, जो नष्ट नहीं की जा सकती, त्यागी नहीं जा सकती, दूर नहीं की जा सकती। वह तुम में है। शरीर कितना ही अपराधी, कितना ही पापमय क्यों न हो, वास्तविक आत्मा की निष्पापता तो वहां है ही। वह अपना बोध करावे ही गी। वह वहां है, उसका विनाश नहीं किया जा सकता"।

अब हम पापों, पाप कहे जानेवाले विविध कार्यों की ओर आते हैं।

खुशामदः—यह पहले आती है। इसे घोर पाप तो नहीं समझा जाता, परन्तु यह है सार्वभौम।

यह क्या बात है कि, तुच्छ से तुच्छ कीड़े से लगा कर ईश्वर तक को खुशामद पसन्द है? यह क्या बात है कि, प्रत्येक प्राणी खुशामद का गुलाम है, स्तुति, लल्लो-चप्पो, और हाँजी २ चाहता है? प्रत्येक चाहता है कि, वह बहुत कुछ समझा जावे, ऐसा क्यों है?

कुत्ते भी जब तुम उन्हें चुमकारते और थपथपाते हो बड़े ही प्रसन्न होते हैं। उन्हें भी खुशामद पसन्द है। घोड़ों को चाटुकारिता प्रिय है। घोड़े का मालिक आकर जब उसे

चुमकारता तथा पीठ ठोंकता है, तो वह अपने कान खड़े कर लेता और उत्साह से भर उठता है।

भारत में कुछ राजा शिकार में कुत्तों के बदले चीतों से काम लेते हैं और शिकार को तीन छलांगों में पकड़ना चीते का स्वभाव है। यदि उसने शिकार (तीन छलांगों में) पकड़ लिया तो बहुत अच्छा, नहीं तो चीता हताश होकर बैठ जाता है। ऐसे अवसरों पर राजा-महाराजा आकर चीते को थपथपाते और चुमकारते हैं और तब फिर उसमें शक्ति भर जाती है। हम देखते हैं कि, चीतों को भी खुशामद पसन्द है। ऐसे आदमी को ले लीजिये जो किसी काम का नहीं, व्यर्थ है। उसके पास जाइये और हां में हां मिला कर उसका दिल बढ़ाइये, उसकी खुशामद कीजिये। ओः! उसका चेहरा प्रसन्नता से चमचमा उठता है। तुरन्त ही आपको उसके गालों पर लालिमा दिखाई पड़ेगी।

जिन देशों में लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वहां हम देखते हैं कि वे (देवगण) भी चाटुकारिता से तुष्ट होते हैं। और कुछ एकेश्वरवादियों की प्रार्थनाओं का क्या अर्थ है? उनकी स्तुतियां उनके आवाहन-मंत्र क्या हैं? उनकी परीक्षा कीजिये। निस्वार्थभाव से, पक्षपात-बुद्धि को त्याग कर उनकी परीक्षा कीजिये, आप देखेंगे कि खुशामद के सिवाय वे कुछ नहीं हैं। यह क्या बात है कि, चाटुकारिता सर्वभौम है। प्रत्येक प्राणी खुशामद पसन्द करता है, परन्तु साथ ही एक भी मनुष्य उस तरह की खुशामद का पात्र नहीं है, जो उसे खुश करती है। एक भी मनुष्य उन अनावश्यक सराहनाओं की योग्यता नहीं रखता जो उसके प्रशंसक उसकी करते हैं। वेदान्त यह कह कर इसकी व्याख्या करता है कि, प्रत्येक व्यक्ति में,

प्रत्येक मनुष्य में वास्तविक स्वयं, सच्ची आत्मा है, जो वस्तुतः श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ है, उच्चों में सर्वोच्च है। सचमुच तुममें कोई ऐसी वस्तु है, जो सब से उच्च है और जो अपने अस्तित्व का बोध कराती है। खुशामदी जब हमारी प्रशंसा और स्तुतियां करने लगता है तब हम फूल उठते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। क्यों? इन कथनों की सत्यता इसका कारण नहीं है। परन्तु वेदान्त कहता है कि, वास्तविक कारण हमारे वास्तविक आत्मा में है दृश्यों के पीछे कोई चीज़, कोई प्रबल शक्ति, कोई वस्तु कठिन और अक्षय, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च है, जो आपका वास्तविक आत्मा और सब तरह की खुशामद तथा प्रशंसाओं के योग्य है। और कोई भी खुशामद, कोई भी स्तुति, कोई भी उत्कर्ष वास्तविक आत्मा के योग्य नहीं हो सकता। किन्तु इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि, राम खुशामद को नीतिसंगत बतला रहा है। नहीं। वास्तविक आत्मा की खुशामद, प्रशंसा, और गौरव-गान होना चाहिये, न कि शरीर की। तुच्छ स्वयं को इनका अधिकारी न समझना चाहिये। "जो पदार्थ सीज़र के हैं वे सीज़र को दो और ईश्वर की वस्तुयें ईश्वर को"। खुशामद में पाप यही है कि, सीज़र की चीज़ें ईश्वर को और ईश्वर के पदार्थ सीज़र को देने की भूल की जाती है। हमारे खुशामद के दास होने की पापात्मकता इसी उलट-पुलट दशा में है। इसी में पापमयता है। हां, गाड़ी घोड़े के आगे रक्खी जाती है। यदि आप स्वयं का अनुभव कर सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च से अपनी एकता का बोध करें, और उसे अपनी आत्मा समझें, शरीर से, चित्त से ऊपर उठें, तो वास्तव में आप श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ हैं, उच्चों में सर्वोच्च हैं, आप ही अपने आदर्श हैं, अपने ईश्वर आप ही हैं। इसका अनुभव कीजिये और आप

स्वतंत्र हैं। किन्तु आत्मा, वास्तविक स्वयं का गौरव शरीर को देने में और शरीर के लिये उत्कर्ष तथा खुशामद चाहने में भूल की जाती है। यही भूल है। यह क्या बात है कि, इस संसार में हरेक मनुष्य और हरेक पशु भी दर्प या खुशामद से कलुषित है? यह क्या बात है कि अहंकार और अभिमान सर्वव्यापी हैं?

एक सज्जन ने आकर राम से कहा, "देखिये, देखिये! हमारा धर्म सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उसके उपासकों की, उसे माननेवाले लोगों की संख्या सब से बड़ी है। मानवजाति का अधिकतम भाग हमारे धर्म का है, इस लिये अवश्य ही वह सब धर्मों से अच्छा है" राम ने कहा, "भइया, भइया, समझ बूझ कर बात कहो। "तुम शैतान में विश्वास करते हो?" उसने कहा, "हां"। "तो कृपया बतलाइये कि, शैतान के धर्म के अनुयायी अधिक हैं या आपके धर्म के? यदि बहु-संख्या पर सत्य का निर्णय होना है, तो शैतान को सब पर श्रेष्ठता प्राप्त है"।

हम कहते हैं कि, अभिमान या अहंकार ने, आप इसे शैतान का एक पहलू कह सकते हैं, इस संसार के प्रत्येक प्राणी पर दृढ़ अधिकार कर लिया है! यह क्या बात है? साथ ही हम यह भी जानते हैं कि शरीर किसी प्रकार के गर्व के योग्य नहीं है, शरीर को अभिमान करने का श्रेष्ठता का भाव दिखाने का कोई अधिकार नहीं है। हरेक जानता है कि शरीर किसी प्रकार के अहंकार अभिमान की पात्रता या योग्यता नहीं रखता, परन्तु हरेक में यह वर्तमान है। ऐसा क्यों है? यह सार्वभौम विलक्षणता कहां से आई? यह सार्वभौम विरोधाभास, यह सार्वभौम विरोध कहां से

आया ? यह अवश्य तुम्हारे भीतर से आया होगा। कारण ढूढ़ने दूर नहीं जाना है। तुम्हारे भीतर श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् आपका वास्तविक स्वयं है। तुम्हें उसे जानना और अनुभव करना पड़ेगा, और जब तुम सच्चे स्वयं, वास्तविक आत्मा को जानो और अनुभव करलोगे तब इस तुच्छ शरीर के लिये प्रशंसा पाने को तुम कभी न झुकोगे। तब फिर इस क्षुद्र शरीर के लिये अहंकार या गर्व प्राप्त करने को तुम कभी न झुकोगे। यदि तुम सच्चे स्वयं का अनुभव कर लो, यदि तुम स्वयं अपने हृदय का उद्धार करलो, तो तुम्हीं अपने उद्धारक हो। यदि तुम अपने अन्दर ईश्वर का अनुभव करलो, तो इस तुच्छ शरीर के लिये प्रशंसायें सुनना, अपने शरीर की स्तुतियां सुनना तुम्हें अपने आपको तुच्छ और नीच बनानेवाला कार्य समझ पड़ेगा। तब तुम शारीरिक अभिमान या स्वार्थपूर्ण अहंकार से ऊपर उठ जाओगे। शारीरिक अभिमान या स्वार्थमूलक अभिमान से ऊपर उठने का यही उपाय है।

अन्तर्गत सच्ची आत्मा, सच्चा स्वयं श्रेष्ठों में श्रेष्ठ, उच्चों में उच्च, देवों में परमदेव होता हुआ अपने स्वभाव को कैसे छोड़ सकता है ? यह आत्मा अपने को पतित कैसे बना सकती है, अपने को दीन, भाग्यहीन, कीड़ा या मकोड़ा कैसे मान सकती है ? इतनी गहरी अज्ञानता में वह अपने को कैसे गिरा सकती है ? वह अपनी प्रकृति नहीं त्याग सकती है ? और अहंकार या अभिमान के सार्वभौम होनेका यही कारण है किन्तु इस व्याख्या से अहंकार या अभिमान नीतिसंगत नहीं सिद्ध होता। शरीर के लिये अभिमान, अहंकार अयुक्त है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी चलती है और, पृथ्वी के सम्बन्ध में, सूर्य स्थिर है। सब जानते हैं कि सूर्य नहीं चलता और पृथ्वी चक्कर करती है। किन्तु हम एक भूल करते हैं, भ्रम में पड़ जाते हैं।। पृथ्वी की गति हम सूर्य को प्रदान करते हैं और सूर्य की अचलता पृथ्वी को। इसी तरह की भूल वे लोग करते हैं, जो अभिमान के भूखे हैं, जो अहंकार के अधीन है। यहां भी उसी तरह की भूल होती है। यहां आत्मा, वास्तविक सूर्य. प्रकाशों का प्रकाश है, जो अचल है, जो वास्तव में सम्पूर्ण गौरव का मूल है, और शरीर पृथ्वी के तुल्य है, जो हर घड़ी बदलती रहती है और किसी तरह की प्रशंसा की पात्र नहीं, किसी प्रकार के गौरव की योग्यता से रहित है, परन्तु आत्मा का गौरव शरीर को प्रदान करने में और शरीर की निरर्थकता आत्मा को, वास्तविक स्वयं को प्रदान करने की भूल करते हैं। यह भूल, अविद्या का यह प्रकार इस तुच्छ शरीर के लिये उत्कर्ष चाहने का कारण है। अच्छा, यदि इस अज्ञान को शैतान कह सकते हैं, यदि शैतान का अनुवाद अज्ञान किया जा सकता है, तो हम कह सकते हैं कि, इस रीति से शैतान आकर चीजों को अस्तव्यस्त कर देता है, आत्मा का गौरव शरीर को और शरीर की असारता आत्मा को प्रदान करता है। इस अविद्या को दूर करो और तुमने अभिमान या अहंकार को नष्ट कर दिया।

यह क्या बात है कि, लोलुपता, उत्कर्ष, या लालच सार्वभौम हैं? पशुओं में लोलुपता है, मनुष्यों में है, नारियों में है, प्रत्येक में है। यह क्या बात है कि, लोलुपता, लालच, या उत्कर्ष सार्वभौम हैं? हरेक चाहता है कि उसे सब तरह की वस्तुयें प्राप्त हो जाँय। हरेक अपने शरीर के इर्दगिर्द पदार्थों

का संग्रह करना चाहता है, और इस लोलुपता की तृप्ति कभी नहीं होती। जितना ही अधिक तुम पाते हो उतना ही अधिक लोभ की लौ भभकती है, उतनी ही उसमें आहुति पड़ती है। तुम सम्राट बन जाते हो, परन्तु फिर भी लोभ वर्तमान है और वह सम्राटोपयुक्त है। तुम गरीब आदमी हो और तुम्हारा लोभ भी गरीब है। वह सार्वभौम क्यों है? गिर्जों में, देवालयों में, मसजिदों में, सर्वत्र उपदेशक बड़े २ उपदेश देते और कहते हैं, "भाइयो! लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो"। लोभ का गला घोटने में वे अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं, वे उसे हटाना, निर्मूल करना चाहते हैं, परन्तु उनके सम्पूर्ण निवारण-उपदेश व्यर्थ जाते हैं और वह बना रहता है। यह क्यों? वह रोका नहीं जा सकता, उसका गला नहीं दबाया जा सकता, वह वर्तमान है। इसे समझाओ। लोभ के रोग को विनष्ट करने की इच्छा करने के पूर्व हमें उसका कारण जान लेना चाहिये। जब तुम रोग का कारण न बतलाओगे तब तक उसे अच्छा करने की आशा तुमसे नहीं की जा सकती। हमें उसका कारण जान लेना चाहिये। शैतान तुम्हारे हृदय में उसे रखता है, यह कहना अवैज्ञानिक है, अतात्त्विक है। तर्कशास्त्र के सब नियमों के यह विरुद्ध है। इससे काम नहीं चलेगा। यदि तुम तथ्य की कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं कर सकते तो यह पौराणिक व्याख्या क्यों? यह सार्वभौम क्यों है? वेदान्त इसे यह कह कर समझाता है कि, मनुष्य में वास्तविकता, सच्चा स्वयं, प्रकृत आत्मा है और वह अपना निरूपण करती है। वह कुचली नहीं जा सकती। कहा जाता है कि, कोई भी शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती, कोई भी बल छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकता। पौरुष के संरक्षण, पदार्थ की अनश्वरता,

शक्ति के आग्रह के नियम को हम सुनते हैं। ये सब बातें हमें सुनने को मिलती हैं, और यहां वेदान्त कहता है, "ऐ मंत्रियों, ऐ ईसाइयो, हिन्दुओ, और मुसलमानो, तुम इस शक्ति को, इस बल को, जो लोभ के रूप में प्रकट होता है, कुचल नहीं सकते"। तुम इसका दमन नहीं कर सकते। अनादि काल से सब प्रकार के धर्म लोभ, कृपणता, उत्कर्ष के विरुद्ध उपदेश देते चले आ रहे हैं परन्तु तुम्हारे वेद, बाइबिल, और क़ुरान संसार को कुछ भी न सुधार सके। लोभ वर्तमान है। शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती परन्तु तुम उसका सदुपयोग कर सकते हो। वेदान्त कहता है, "ऐ संसारी मनुष्य, तू एक ग़लती करता है"। सब से महान शब्द, तीन अक्षरों का शब्द जीG-ओO-डीD (गाड=ईश्वर), ले लीजिये और उसे व्यतिक्रम से पढ़िये। वह क्या होजाता है? डीD-ओO-जीG (डाग=कुत्ता)। इस प्रकार तुम शब्दों में शुद्ध का अनर्थ कर रहे हो, तुममें जो शुद्ध ईश्वर है उसे कुछ और ही समझ रहे हो, उसे तुम उलटी तरफ़ से पढ़ते हो और इस तरह अपने को सचमुच कुत्ता बनाते हो, यद्यपि वास्तव में तुम विशुद्धों में विशुद्ध, विशुद्ध ईश्वर हो। भूल से, आत्मा का गौरव शरीर पर और शरीर की तुच्छता आत्मा में आरोपित करने के अज्ञान के कारण, इस भूल के कारण तुम लोभ के शिकार बनते हो। इस भूल को निर्मूल करदो और तुम अमर परमात्मा हो। तुममें निहित सच्चे स्वयं का उद्धार करो, सच्चे स्वयं पर दृढ़ता से खड़े हो, और अपने को देवों का परमदेव, विशुद्धों में विशुद्ध, विश्व का स्वामी, प्रभुओं का प्रभु अनुभव करो, फिर इन बाहरी वस्तुओं को ढूंढ़ कर इस शरीर के इर्दगिर्द जमा करना तुम्हारे लिये असम्भव हो जायगा।

अब हम प्रीति या शोक के व्यापार पर आते हैं। प्रीति का कारण क्या है? इसका अर्थ यह है कि, इस व्याधि से पीड़ित मनुष्य अपने आसपास की वस्तुओं में परिवर्त्तन नहीं चाहता। किसी अपने प्रिय की मृत्यु से कोई मनुष्य चिन्ता और शोक से परिपूर्ण है। उसके शोक और क्षोभ से क्या सूचित होता है? इससे क्या सिद्ध होता है? जब हम बुद्धि से जानते हैं कि, इस संसार में प्रत्येक वस्तु परिवर्त्तनशील है, बहाव की दशा में है, तो क्या हम ज्यों की त्यों दशा बनी रहने की आशा कर सकते हैं, क्या हम अपने प्यारों को सदा अपने पास रखने की आशा कर सकते हैं? और फिर भी हम इच्छा यही करते हैं कि कोई परिवर्त्तन न हो। यह क्यों? वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य, तुममें कोई ऐसी वस्तु है जो वास्तव में निर्विकार है, जो कल्ह, आज, और सदा एकसां है, परन्तु भूल (अज्ञान) से सच्चे स्वयं की निश्चलता शरीर की अवस्थाओं को प्रदान की जाती है"। यही इसका कारण है । अज्ञान को दूर करो और सांसारिक अनुरागों से तुम दूर खड़े हो।

आलस्य या प्रमाद का क्या कारण है ? वेदान्त के अनुसार प्रमाद या आलस्य के सर्वव्यापकता का कारण यह है कि प्रत्येक और सकल के अन्तर्गत सच्चा आत्मा पूर्ण विश्राम तथा शान्ति है, और अनन्त होनेके कारण सच्चा आत्मा चल नहीं सकता। अनन्त चल नहीं सकता। केवल सान्त ही में गति हो सकती है। यह एक मण्डल है,और यहां दूसरा मण्डल है। जहां यह है, वहां वह नहीं है, और जहां वह है, यह नहीं है। यदि एक दूसरे के अस्तित्त्व को सीमाबद्ध करता है तो दोनों सान्त हैं। यदि हम एक मण्डल को

अनन्त बनाना चाहते हैं तो वह समग्र स्थान को घेर लेगा। छोटे मण्डल के लिये तब स्थान न रह जायगा। जब तक छोटा मण्डल उसे (बड़े मण्डल को) परिमित किये हुए था, तब तक आप उसे अनन्त नहीं कह सकते थे। पहले मण्डल को असीम बनने के लिये एक होना पड़ेगा उससे बाहर कुछ न होना चाहिये। और जब उससे बाहर कोई भी दूसरी चीज़ नहीं है तो फिर ऐसी कोई चीज़ नहीं रह गई जो अनन्तता से परिपूर्ण नहीं है। और इस तरह स्थान के अभाव के कारण अनन्तता चल नहीं सकती। अनन्त में कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। अन्तर्गत आत्मा, सच्चा स्वयं अनन्त है। वह सम्पूर्ण शान्ति, सम्पूर्ण विश्राम है। उसमें कोई गति नहीं है। यह मामला है। अज्ञान से अनन्तता को, आत्मा की शान्ति शरीरगत आलस्य और प्रमाद समझा जाता है। आलस्य और प्रमाद के विश्वव्यापी होने का यही कारण है।

यह क्या बात है कि, इस संसार में कोई भी अपना दुसरिहा (प्रतिद्वंद्वी) नहीं चाहता? हरेक सर्वश्रेष्ठ शासक बनना चाहता है।

"जो कुछ मैं देखता हूं उस सबका मैं सम्राट हूं,
मेरे अधिकार पर आपत्ति करनेवाला कोई नहीं है"।

हरेक मनुष्य यही बोध चाहता है। इसकी विश्वव्यापकता का कारण क्या है? इस तथ्य, इस कठिन, कठोर वास्तविकता को समझाइये, इसे समझाइये। वेदान्त कहता है, मूल कारण यह है, मूल कारण यह है कि, मनुष्य में सच्ची आत्मा है, जो बिना दूसरे के एक है, जो प्रतिद्वंद्वी-रहित है, बेजोड़ है, और भूल से, अज्ञान से आत्मा का गौरव और

एकपन, शरीर पर आरोपित किया जाता है।

दूसरे पापों में हम न प्रवेश करेंगे। उन्हें भी इसी तरह वेदान्त समझाता है। सब घोर पापों की व्याख्या होगई, और इन पापों को दूर करने का सरल उपाय है विश्वव्यापी अज्ञान दूर करना जिसके कारण आप आत्मा के स्वभावों और लक्षणों को शरीर के स्वभाव और लक्षण मानने की भ्रान्ति में फँसते हैं।

एक मनुष्य दो रोगों से पीड़ित था। उसे एक नेत्र-व्याधि थी और एक उदर-रोग था। एक वैद्य के पास जाकर उसने चिकित्सा करने को कहा। वैद्य ने इस रोगी को दो प्रकार की औषधियां, दो तरह के चूर्ण दिये। एक चूर्ण नेत्रों में लगाये जाने के लिये था। एक सुरमा, गंधक था और खा लेने से यह विष है, यह आंखों में लगाया जा सकता है और भारत में लोग इसे नेत्रों में लगाते हैं। इस लिये वैद्य ने उसे नेत्रों के लिये सुरमा दिया। दूसरा चूर्ण वैद्य ने खानेके लिये दिया था। इस चूर्ण में काली मिर्चें आदि थीं। मिर्चें बड़ी गर्म होती हैं। एक चूर्ण वैद्य ने उसे खाने के लिये दिया जिस में मिर्चें थीं। यह मनुष्य व्यग्र दशा में तो था ही, इसने दोनों चूर्णों को आपस में बदल लिया। खानेवाला चूर्ण तो उसने आंखों में लगाया और सुरमा तथा दूसरी चीजें, जो विष थीं उसने खाईं। अब तो आँखे फूट गईं और पेट भी बिगड़ गया।

यही लोग कर रहे हैं, और इस संसार में समस्त एवं कथित पाप का यही कारण है। एक ओर तो आत्मा, प्रकाशों का प्रकाश तुम्हारे भीतर है, और यह है शरीर, जिसे पेट कह लीजिये। शरीर के लिये जो कुछ होना चाहिये वह आत्मा के निमित्त किया जा रहा है, और आत्मा की प्रतिष्ठा, आदर

तथा गौरव शरीर को दिया जा रहा है। हरेक चीज़ मिल गई है, हरेक चीज़ गड़बड़ हालत में कर दी गई है। इस संसार में पाप के नाम से परिचित विलक्षण व्यापार का कारण यही है। चीज़ों को ठीक करलो, तुम भी ठीक हो, तुम्हारा सांसारिक अभ्युदय होगा, और आध्यात्मिक हिसाब से देवों में परमदेव हो।

इसी प्रकार हरेक वस्तु तुममें है, किन्तु कुठौर रक्खे जाने से नीचे ऊपर हैं। ईश्वर तो नीचे डाला जाता है और और शरीर उसके ऊपर रक्खा जाता है तथा सर्वोच्च स्वर्ग घोर नरक में बदला जाता है। उन्हें ठीक क्रम से रक्खो, फिर तुम देखोगे कि, यह पापों का भयंकर और घृणित व्यापार भी तुम्हारी अच्छाई और विशुद्धता बखान रहा है। ठीक देखो और तुम परमेश्वर हो।

एक मनुष्य ने, जो नास्तिक था, अपने घर की दीवारों पर सब कहीं लिख रक्खा था, "ईश्वर कहीं नहीं है"। वह अनीश्वरवादी था। वह वकील था। एक बार एक मुवक्किल ने उसे ५००) देने चाहे। उसने कहा, "नहीं, मैं १०००) लूँगा"। मुवक्किल ने कहा, "बहुत अच्छा, यदि मुकदमा जीत जायगा तो मैं १०००) दूँगा, परन्तु बाद को ५००) लेना मंजूर हो तो पहले ले लीजिये"। वकील साहब को सफलता का दृढ़ निश्चय था और उसने मुकदमा ले लिया। वह न्यायालय गया। उसे पूरा निश्चय था कि, मैंने सब कुछ ठीक किया है। उसने सावधानी से मुकदमे का अध्ययन किया था। किन्तु मुकदमा पेश होने पर प्रतिपक्षी के वकील ने एक ऐसी पुष्ट बात निकाल कर कहदी कि वह मुकदमा हार गया, और मेहनताने के १०००) भी जाते रहे, जिनकी उसे आशा

थी। वह बहुत ही दुखी, हताश और उदास अपने घर लौटा। निराश अवस्था में जब वह अपनी मेज़ के ऊपर झुका हुआ था तब उसका प्यारा बच्चा आया। बच्चा शब्दों के हिज्जे करना सिख रहा था। वह हिज्जे करने लगा, "जी-ओ-डी आई-एस—*यह तो बड़ा शब्द है, इसमें अनेक अक्षर है। बेचारा बच्चा इस शब्द के हिज्जे न कर सका। उसने इस शब्द को दो टुकड़ों में तोड़ डाला, एन-ओ-डब्लू (नाऊ) और एच-ई-आर-ई (हीयर), और बच्चा प्रसन्नता से उछल पड़ा। सम्पूर्ण वाक्य के हिज्जे कर डालने की अपनी सफलता पर वह चकित हो उठा। "ईश्वर अब यहां है" (God is now here), "ईश्वर अब यहां है" ।+यही सारा मामला है।

वेदान्त चाहता है कि आप चीज़ों का शुद्ध विन्यास करें उनका अनर्थ न करिये, उनके ग़लत हिज्जे न कीजिये। इस "गाड इज़ नोव्हेयर God is nowhere" (ईश्वर कहीं नहीं है), अर्थात् पाप और अपराध के चमत्कार को पढ़िये "गाड इज़ नाऊ हीयर God is now here" (ईश्वर अब यहां है)।

तुम्हारे पापों में भी तुम्हारा परमेश्वरत्व, तुम्हारी प्रकृति का परमेश्वरत्व प्रमाणित होता है। इसका अनुभव करो, और समग्र संसार तुम्हारे लिये खिल उठता है, वह स्वर्ग या नन्दन-कानन में बदल जाता है।

---

* "Nowhere नो व्हेयर" बच्चे ने छोड दिया।

+ गाड इज नोव्हेयर (God is nowhere) का अर्थ हुआ "ईश्वर कहीं नहीं है" और "नोव्हेयर" को दो टुकडे कर डालने पर दो शब्द बन गये "नाऊ" और "हीयर" और पूरा नाम हुआ "गाड इज नाऊ हीयर" अर्थात् "ईश्वर है अब यहां"।

एक बार परीक्षा में विद्यार्थियों से ईसा के पानी को मद्य में बदल देने के चमत्कार पर निबन्ध लिखने को कहा गया था। दालान छात्रों से भरा हुआ था और वे लिख रहे थे। एक बेचारा सीटी बजा रहा था, गा रहा था, कभी इस कोने की ओर और कभी उस कोने की ओर देख रहा था। उसने एक भी शब्दांश नहीं लिखा। वह परीक्षा-भवन में भी खेल करता रहा, वह मौज करता रहा। ओः, वह स्वाधीन चित्त का था। समय जाने पर जब प्रबन्धक उत्तर-पत्र जमा कर रहा था तो उसने बाइरन से हंसी में कहा, "मुझे बड़ा खेद है कि, इतना बड़ा निबन्ध लिखते २ तुम थक गये"। तब तो बाइरन ने अपना कलम उठाया और उत्तर-पत्र पर एक वाक्य लिख कर उत्तरपत्र प्रबन्धक को दे दिया। जब परीक्षा का नतीज़ा निकला, तो उसे प्रथम पुरस्कार मिला था, बाइरन को प्रथम पुरस्कार मिला। जिस परीक्षार्थी ने कुछ भी नहीं लिखा था, जिसने कलम उठा कर केवल एक वाक्य एक दफे में खिंचा दिया था, उसे प्रथम पुरस्कार मिला। परीक्षा का प्रबन्धक, जिसने बाइरन खेलंदड़ा समझा था, बड़ा विस्मित हुआ और अन्य परीक्षार्थियों ने परीक्षक से सम्पूर्ण श्रेणी के सामने, विद्यार्थियों के पूरे समूह के सामने बाइरन का निबन्ध, जिसने उसे पुरस्कार दिलाया था, पढ़ने की प्रार्थना की। निबन्ध यों थाः-"जलने अपने स्वामी को देखा और (खिलकर) लाल होगया" यह ईसा के चमत्कार पर था, जिससे उसने जल को मद्य में बदल दिया था। सम्पूर्ण लेख इतना ही था। क्या यह आश्चर्यमय नहीं है? खिल उठने में चेहरा लाल होजाता है, जल लाल मद्य होगया। जब कोई कामिनी अपने स्वामी, अपने प्रेमी की बातचीत सुनती है तो वह विकसित होती है, जलने भी अपना स्वामी देखा और वह

खिल गया। यही सब कुछ है। वाह, वाह! खूब नहीं कहा?

अपने अन्तर्गत सच्चे आत्मा का अनुभव करो। ईसा की तरह अनुभव करो कि, पिता और पुत्र एक हैं। "प्रारम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के साथ था"। इसे अनुभव करो, इसे अनुभव करो। स्वर्गों का स्वर्ग तुम्हारे भीतर है। यह अनुभव करो, फिर जहां तुम जाओगे गंदले से गंदला जल तुम्हारे लिये चमचमती मद्य में खिल उठेगा, हरेक कारागार तुम्हारे लिये स्वर्गों के स्वर्ग में बदल जायगा। तुम्हारे लिये कोई कष्ट या कठिनता न होगी, सबके तुम स्वामी हो जाते हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

नक़द धर्म।

(अक्तूबर १९०६ में गाज़ीपुर में दिया हुआ व्याख्यान।)

सत्यमेव जयते नानृतम्। मुण्डकोपनिषत्।

हमारे वेद में लिखा है कि जय सत्य की ही होती है, झूठ की कभी नहीं। साँच को आँच नहीं। ग़रीब को फरेब नहीं। जहां कहीं दुनिया में ऐश्वर्य और संपत्ति है, धर्म ही उसका मूल कारण है। हिन्दू कहते हैं कि लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है और पतिव्रता है। जहां विष्णु जी अर्थात् सत्य या न्याय होगा वहीं लक्ष्मी होगी। इसको और किसी की परवाह नहीं। ऐश्वर्य किसी भूगोल की सीमा के आश्रित नहीं, अर्थात् किसी स्थान विशेष में बँधी हुई नहीं। जो लोग यूरोप अमेरिका आदि की उन्नति का कारण वहां का शीतल जलवायु बताते हैं, या जो अन्य देशों की अवनति का कारण वहां का क्षेत्र विशेष कहते हैं वे भूल करते हैं। अभी दो हजार वर्ष नहीं हुए कि इंग्लैंड के निवासी रोम आदि देशों में कैदी और गुलाम बने बिकते थे। आज इंग्लैंड इतने बड़े देशों का राज्य कर रहा है। क्या इंग्लैण्ड अपनी पुरानी चौहद्दी से भाग कर कहीं आगे निकल गया है? पांच सौ वर्ष पहले अमेरिका पृथ्वी के उसी भाग पर था जहां आज, किन्तु इस समय वहां के निवासियों की अवस्था के भेद का अनुमान कीजिये। रोम, यूनान, मिश्र और हमारा भारतवर्ष आज वहीं तो है, जहां उन दिनों थे, जब कि समस्त पृथ्वी में इनकी विद्या और वैभव की धाक

बंधी थी। वैभव (ऐश्वर्य,) देशों और मुल्कों की परवाह नहीं करता। जो लोग सत्य पर चलते हैं केवल उन्हीं की जय होती है। और जब तक सत्य धर्म पर चलते रहते हैं उनकी विजय बनी रहती है। प्यारे! क्षमा करना, राम आप का है और आप राम के हैं, तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं। पूरे प्रेम के साथ सामने आओ। कुछ हम कहेंगे प्रेम से कहेंगे किन्तु खुशामद नहीं करेंगे। प्रेम यह चाहता है कि मनुष्य खुशामद न करे। राम जापान में रहा, अमेरिका में रहा, यूरोप के कई मुल्क भी देखें, पर जहां जय देखी सत्य की देखी। अमेरिका जो उन्नति कर रहा है, धर्म पर चलने से कर रहा है। धर्म पर किसी का ठेका (इजारा) नहीं। प्रत्येक स्थान में यह आचरण में आ सकता है। धर्म दो प्रकार का है, एक नक़द, दूसरा उधार। यह एक दृष्टांत से स्पष्ट होगा। एक मनुष्य ने कुछ धन जमीन में गाड़ रक्खा था। उसके लड़के को मालूम हो गया। लड़के ने जमीन खोद कर धन निकाल लिया, और खर्च कर डाला। किन्तु तोल कर उतने ही वजन के पत्थर वहां रख छोड़े। कुछ दिन के बाद जब बाप ने जमीन खोदी और रुपया न पाया तो रोने लगा, हाय मेरी दौलत कहां गई। लड़के ने कहा "पिता जी, रोते क्यों हो? आप को उसे काम में तो लाना ही न था। और रख छोड़ने के लिये देख लो उतने ही तौल के पत्थर वहां मौजूद हैं।

बरारा निहादन चे संगो चे जर।

अर्थात् रख छोड़ने के लिये जैसे पत्थर वैसे रुपये।

धार्मिक वाद विवाद और झगड़े जो होते हैं, वह नक़द धर्म पर नहीं होते, उधार धर्म पर होते हैं। नक़द धर्म वह

है जो मरने के बाद नहीं किन्तु जीते जी (वर्त्तमान जीवन) से सम्बन्ध रखता है। उधार धर्म पतवारी अर्थात् अंध विश्वास पर निर्भर होता है, नक़द धर्म श्रद्धात्मक, अर्थात् अन्तःकरण के दृढ़ विश्वास का। उधार धर्म कहने के लिये नक़द धर्म करने के लिये। वह भाग जो धर्म का नक़द है, उस पर सर्व धर्मों की एकवाक्यता है। "सत्य बोलना, ज्ञान संपादन करना और उसे आचरण में लाना, स्वार्थ से रहित होना, परधन, पर स्त्री को देख कर अपना चित्त न बिगाड़ना, संसार के लालच और धमकियों के जादू में आकर वास्तविक स्वरूप (ज़ात मुतलक़) को न भूलना, दृढ़चित्त और स्थिर स्वभाव होना, इत्यादि"। इस नक़द धर्म पर कहीं दो सम्मतियां नहीं हो सकती। झगड़े उस धर्म पर लोग करते हैं, जो दवा कर रखते हैं। उधार के दावे, वाद विवाद करने की प्रीति रखनेवाले लोगों को छोड़ कर स्वयं नक़द धर्म (फ़र्ज़-मौजुदः) पर चलते हैं, वे उन्नति और वैभव को पाते हैं। इस बात का अनुभव अन्य देशों में जाने से हुआ। भारतवर्ष और अमेरिका में क्या भेद है? यहां दिन है, वहां रात है। वहां दिन है, तो यहां रात है। जिन दिनों भारत वर्ष के ग्रह अच्छे थे-हिन्दुस्तान का सितारा ऊँचा था, अमेरिका को कोई जानता भी न था। आज अमेरिका उन्नति पर है, तो भारतवर्ष की कोई पूछ नहीं। हिन्दुस्तान में बाज़ार आदि में रास्ता चलते बाएँ ओर चलते हैं वहां दाएँ ओर। पूजा और सत्कार के समय यहां जूता उतारते हैं, वहां टोपी। यहां घरों में राज्य पुरुषों का है, वहां स्त्रियों का! इस देश में यह शिकायत है कि विधवा ही विधवा है उस देश में कुमारियों (अविवाहिता) की अधिकता है। हम कहते हैं "पुस्तक मेज पर है" वे कहते हैं "पुस्तक पर मेज,

The book on the table" हिन्दुस्तान में गधा और उल्लू मूर्खता की संज्ञा है, उस देश में गधा और उल्लू भलाई और बुद्धिमता का चिन्ह है। इस देश में जो पुस्तक लिखी जाती है, जब तक आधी के लगभग पहले के विद्वानों के प्रमाणों से न भरी हो उसका कुछ सन्मान नहीं होता। उस देश में पुस्तक की सारी बातें नवीन न हों तो उसकी कोई कदर ही नहीं। यहां किसी को कोई विद्या या कला मालूम हो जाय तो उसे छिपा कर रखते हैं, वहां उसे वर्त्तमानपत्रों में प्रकट कर देते हैं। यहां अंध विश्वास (उधार धर्म) अर्थात् गतानुगतिक अनुकरण अधिक है, वहां दृढ़विश्वास (नक़द धर्म) बहुत है। हमारे यहां इस बात में बड़ाई है कि औरों से न मिलें, अपने ही हाथ से पकाकर खायें और सब से अलग रहें, वहां पर जितना औरों से मिलें उतनी ही बड़ाई है। यहां पर अन्य देशों की भाषा पढ़ना दोषयुक्त समझा जाता है—"न पठेत् यावनीं भाषाम्" यवन लोगों (म्लेच्छों) की भाषा न पढ़ना चाहिये, वहां जितना अन्य देशों की भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उतना ही अधिक सन्मान होता है। जब राम जापान को जा रहा था तो जहाज पर अमेरिका का एक वयोवृद्ध प्रोफेसर मित्र बन गया। वह रूसी भाषा पढ़ रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि ग्यारह भाषायें वह पहले भी जानता है। उससे पूछा गया "इस वय में यह नवीन भाषा क्यों सीखते हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं भूगर्भशास्त्र (Geology) का प्रोफेसर हूँ। रूसी भाषा में भूगर्भशास्त्र की एक अच्छी पुस्तक लिखी गई है, यदि मैं इसका अनुवाद कर सकूंगा तो मेरे देशबान्धवों को अत्यन्त लाभ पहुँचेगा। इस लिये रूसी भाषा पढ़ता हूं।" राम ने कहा "अब तुम मौत के

निकट हो, अब क्या पढ़ते हो ? अब ईश्वर सेवा करो *डुकृञ्करणे में क्या धरा है'? "उसने उत्तर दिया" लोक-सेवा ही ईश्वर सेवा है।"

बन्दा हूं बेखुदा मैं बन्दे मेरा खुदा है।

अर्थात् बिना ईश्वर का मैं मनुष्य हूं, लोक मेरे ईश्वर हैं। इसके साथ यदि इस काम को करते २ मुझे नरक में जाना पड़ेगा तो मैं जाऊंगा, इसकी कुछ परवाह नहीं। नरक में मुझे दुःख मिलते हैं, तो हजारों जन्मों से भी कबूल है, यदि देश बान्धवों को सुख,लाभ मिल जाय। इस जीवन में सेवा के आनन्द का अधिकार मैं मौत के उस पार के डर से नहीं छोड़ सकता।

गुजश्ता ख्वाबो आमन्दा खयालस्त,
गनीमत दां हमीं दमरा कि हालस्त।

भावार्थः—भूतकाल को स्वप्न समान समझ, भविष्य केवल अनुमानमात्र है, और वर्त्तमान काल में जो श्वास अभी चलता है उसे तू उत्तम समझ।

यही नक़द धर्म है। भगवद्गीता में बड़ी सुन्दरता से आज्ञा दी है किः—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। गीता २। ४७।

अर्थात् कर्म तो करते ही जाओ, परन्तु फल पर दृष्टि मत रक्खो। लॉर्ड मेकाले की प्रार्थना थी कि मैं मरूं तो पुस्तकालय में मरूं। मैं मरूं तो प्यारे की गली ही में मरूं।

दफन करना मुझ को कूए-यार में,
कब्रे-बुलबुल की बने गुलज़ार में।

भावार्थः—मेरे प्यारे की गली में मुझे गाड़ना, क्योंकि बुलबुल पक्षी की समाधि बागों में ही बनती है।

---

* देखो श्री शंकराचार्य कृत चर्पटपंजरिका स्तोत्र— 'भज गोविंदं' इत्यादि।

मरें तो कर्त्तव्य पालन करते २ मरें, शस्त्रों के साथ मरें, युद्धक्षेत्र में मरें। हिम्मत, आनन्द और उत्साह के साथ प्राण त्याग करें।

एक मनुष्य (माली) बाग लगाता था। किसी ने पूछा " बूढ़े मियां, क्या करते हो ? तुम क्या इसके फल खाओगे ? एक पाँव तो तुम्हारा मानो पहले ही कब्र में है, क्या तुमको वह फकीर की बात याद है ?

> घर बनाऊं खाक इस वहशत-कदा में नासिहा,
> आये जब मजदूर मुझ को गोर-कन याद आ गया।

भावार्थः—ऐ उपदेशक ! इस भयंकर संसार में क्या खाक घर बनाऊं ? जब मजदूर आये तो मुझे कब्र खोदने-वाले याद आ गये।

माली ने उत्तर दिया, " औरों ने बोया था, हमने खाया, हम बोयेंगे और खायेंगे "। इसी प्रकार संसार का काम चलता है। जितने बड़े२ हो गये हैं, ईसा, मुहम्मद इत्यादि, क्या इन महा पुरुषों ने उन वृक्षों का फल आप स्वयं खाया था जो वे बो गये ? कदापि नहीं। इन महापुरुषों ने तो केवल अपने शरीरों को मानों खाद बना दिया, फल कहां खाये ? जिन वृक्षों का फल सदियों के बाद लोग आज खा रहे हैं, वे उन ऋषियों की खाक से उत्पन्न हुए हैं। यह सिद्धान्त ही धर्म का वास्तविक प्राण है। यही नियम उस प्रोफेसर के आचरण में पाया गया जो रूसी भाषा पढ़ता था।

जिस समय राम जापान से अमेरिका को जाता था, जहाज में कोई डेढ़ सौ जापानी विद्यार्थी थे जिनमें कुछ अमीरों के घराने के भी थे। पर उनमें शायद ही कोई ऐसा था जो अपने घर से रुपया ले चला हो। बहुधा उनमें ऐसे

थे कि जहाज का किराया भी उन्होंने घर से नहीं दिया था। कोई उनमें से धनाढय प्रवासियों के बुट साफ करने पर, कोई जहाज की छत के तख्ते धोने पर, कोई ऐसे ही अन्य छोटे कामों पर नौकर हो गये थे, और जहाज का खर्च इस प्रकार पूरा कर रहे थे। पूछने से उनका यह विचार पाया गया कि अपने देश का धन अन्य देशों में जाकर क्यों खर्च करें? जहाज का किराया भी जहाज का काम कर के देते हैं। अमेरिका में जाकर इनमें से कुछ विद्यार्थी तो अमीरों के घरों में दिन भर महनत मज़दूरी करते थे और रात को रात्रिशाला (Night School) में पढ़ते थे और कुछ रेल की सड़क पर या बाजारों में रोड़ी कूटने पर या किसी और काम पर लग गये। यह लोग गरमियों में मज़दूरी करते थे और सर्दियों में कालिज की शिक्षा पाते थे।

पये इल्म चूं शमअ बायद गुदाख्त।

अर्थात् विद्या के लिये मोमबत्ती की भांति पिघलना चाहिये। इसी प्रकार सात आठ वर्ष रहकर अपने दिमाग़ को अमेरिका की विद्या तथा कलाकौशल से और अपनी जेबों को अमेरिका के रुपये से भरकर यह जापानी विद्यार्थी अपने देश में वापिस आते हैं। प्रत्येक जहाज़ में बीसियों और कई बार सैंकड़ों जापानी प्रतिवर्ष जहाजों में जर्मनी व अमेरिका को जाकर वहां से विद्या प्राप्त करके वापिस आते हैं। इसका परिणाम आप देख ही रहे हैं। पचास वर्ष हुए जापान भारतवर्ष से भी नीचा (गिरा हुआ) था। आज यूरोप से चढ़ गया। तुम्हारा हाथ खूब गोरा चिट्टा है, और इसका रुधिर बिलकुल साफ है, अगर कलाई पर पट्टी बाँध लोगे तो हाथ का रुधिर हाथ ही में रहेगा, शरीर के और भाग में

नहीं जायगा, किन्तु गंदा हो जायगा,और हाथ सूख जायगा। इसी प्रकार जिन देशों ने यह कहा कि हम ही उत्तम हैं, हम ही अच्छे हैं, हम ही बड़े हैं, हम म्लेच्छों या काफिरों से क्या सम्बन्ध रक्खें ? और अपने आपको अलग थलग कर लिया, उन्होंने अपने आप पर मानो पट्टी बाँध कर अपने तईं सुखा लिया। प्रसिद्ध कहावत है कि

"बहता पानी निरमला खड़ा सो गन्दा होय।"

आबे-दरयां बहे तो बिहतर,
इन्सान रवां रहे तो बिहतर।

अर्थात् नदी का जल बहता रहे तो अच्छा, और मनुष्य चलता रहे तो उत्तम है।

यदि विचार से देखा जाय तो मालुम होगा कि जिन देशों ने उन्नति की है, चलते ही रहने से की है। अमेरिका के लोगों की स्थिति इस विषय में देखिये। औसतन् ४५०००, अमेरिकन प्रतिदिन पेरिस में रहते हैं, झुण्डों के झुण्ड आते हैं, और जाते हैं। कोई जरा सी नवीन रचना व घटना फ्रान्स में देखी तो झट अपने देश में पहुँचा दी। प्राचीन विद्याओं और कला कौशल्यों के सीखने में कोई कम नहीं। इस मौसम अर्थात् शरद ऋतु में कोई ८०००० अमेरिकन मिश्र में आते जाते हैं मीनारों को देखते हैं। ४० फी सदी अमेरिकन सारी दुनियां घूम चुके हैं। इस तरह से ये लोग जहां किसी विद्या का ज्ञान होता है वहां से लाकर अपने देश में पहुँचा देते हैं। जर्मनी वालों की भी यही दशा है। अमेरिका से आते समय राम जर्मन जहाज़ पर सवार था। उसमें लगभग तीनसौ मनुष्य प्रथम वर्ग के प्रवासी होंगे। उनमें प्रोफेसर, ड्यूक, बेरन, सौदागर लोग शामिल थे। दिन के समय

साधारणतः राम जहाज़ की सब से ऊँची छत पर जाकर बैठता था, एकान्त में पढ़ता लिखता था, या ध्यानविचार में लग जाता था, किन्तु जर्मन लोग जहाज़ के ऊपर छत पर चढ़कर राम को नीचे लाते थे और राम के व्याख्यान कराते थे। राम को विदेशी समझ कर उसके साथ काफ़िर या म्लेच्छ का बर्ताव तो न था, किन्तु यह खयाल था कि जितना भी ज्ञान इस विदेशी से मिल सकता है, ले लें। संयुक्त संस्थान अमेरिका में सब से पहला नगर जो राम ने देखा वह वाशिंग्टन है। वहां वाशिंग्टन यूनिवर्सिटि ने राम को हिन्दू दर्शन शास्त्र पर व्याख्यान देने को निमन्त्रण दिया। व्याख्यान के बाद एक युवान् प्रोफेसर से मिलना हुआ जो अभी २ जर्मनी से वापिस आया था। राम ने पूछा "जर्मनी क्यों गये थे?" उसने जवाब दिया, "वनस्पति शास्त्र और रसायन शास्त्र में अपनी यूनिवर्सिटि की जर्मन युनिवर्सिटियों से तुलना करने गया था।" और साधारण रीति से इसका परिणाम यह सुनाया कि इस वर्ष का समय हुआ जर्मन लोग हम से बढ़ कर थे किन्तु आज हम उनसे कम नहीं हैं।

"पीर शोविया मोज़" अर्थात् वृद्धावस्था पर्यन्त पढ़ते ही जाओ। जानतोड़ परिश्रम के साथ विदेशियों से सीख २ कर उन लोगों ने विद्या को पाया और बढ़ाया है।

यह विचार ठीक नहीं कि अमेरिका के लोग डालर (रुपया) के दास हैं, बल्कि विद्या के पीछे डालर तो स्वयं आता है। जो लोग अमेरिकावालों पर यह कलंक लगाते हैं कि उनका धर्म नक़द धर्म नहीं बल्कि 'नक़दी'-धर्म है, वे या तो अमेरिका की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ हैं, या नितान्त अन्यायी हैं, और उन पर यह कहावत ठीक बैठती

है कि अंगूर अभी कच्चे हैं, कौन दांत खट्टे करे। .

केलीफोर्निया (California) में एक स्त्री ने अठारह करोड़ रुपया देकर एक विश्वविद्यालय (University) स्थापित किया। इसी प्रकार विद्या के बढ़ाने फैलाने के लिये प्रति वर्ष करोड़ों का दान दिया जाता है। भारत वर्ष की ब्रह्मविद्या का यहां इतना सन्मान है कि जैसा वेदान्त अमेरिका में है वैसा व्यावहारिक वेदान्त भारत वर्ष में आज कल नहीं है। उन लोगों ने यद्यपि हमारे वेदान्त को पचा लिया है और अपने शरीर और अन्तःकरण में खपा लिया है, किन्तु वे हिन्दू नहीं बन गये। वैसे ही हम उनकी विद्या और कला कौशल्य को पचा कर भी अपना राष्ट्रीयत्व-हिन्दूत्व स्थिर रख सकते हैं। वृक्ष बाहर से खाद लेता है किन्तु खुद खाद नहीं हो जाता। बाहिर की मिट्टी, जल, वायु, तेज को खाता है, और पचाता है किन्तु मिट्टी, जल, वायु आदि नहीं हो जाता। जापानियों ने अमेरिका और यूरप के विज्ञान शास्त्र और कला कौशल्य पचा लिये, किन्तु जापानी ही बने रहे। देवताओं ने अपने कच (बृहस्पति के पुत्र) को राक्षसों के पास भेज कर उनकी संजीवनी विद्या सीख ली किन्तु इस से वे राक्षस नहीं होगये। इसी तरह तुम यूरप और अमेरिका जा कर ज्ञान (विद्या तथा कला कौशल्य) सीखने से गैर हिन्दू (अनार्य) और गैर हिन्दुस्तानी (विदेशीय) नहीं हो सकते। जो लोग विद्या को भूगोल की तटबन्धी में डालते हैं कि "यह हमारा ज्ञान है, वह विदेशियों का ज्ञान है। विदेशियों का ज्ञान हमारे यहां आने से पाप होगा, और हाय! हमारा ज्ञान और लोग क्यों ले जाय" ऐसे विचार वाले लोग अपने ज्ञान को घोर अज्ञान में बदलते हैं। इस कमरे में प्रकाश है, यह प्रकाश अत्यंत आल्हादकारक और प्रसन्नकारी है,

अगर हम कहें यह प्रकाश हमारा है, हमारा है, हमारा, हाय! यह कहीं बाहर के प्रकाश से मिल कर अपवित्र न होजाय। और इस विचार से अपने प्रकाश की रक्षा करते हुए हम चिकं गिरा दें, परदे डाल दें, द्वार भेड़ दें, खिड़कियां लगा दें, रोशनदान बन्द कर दें, तो हमारा प्रकाश इकदम दूर हो जायगा। नहीं नहीं मुश्केस्याह (कस्तूरी समान काला) हो जायगा अर्थात् अँधेरा ही अंधेरा फैल जायगा। हाय! हम लोगों ने भारतवर्ष में यह अन्ध पद्धति क्यों स्वीकार करली।

हुब्बुल्वतन अज मुल्के—सुलेमां खुश्तर,
खारे—वतन अज संबुले—रेहां खुश्तर।

अर्थात् स्वदेश तो सुलेमान के देश से भी प्यारा होता है। स्वदेश का काँटा तो सुँवल और रेहां से भी उत्तम होता है।

ऐसा कहकर स्वयं तो काँटा हो जाना और देश को काँटों का वन बना देना स्वदेशभक्ति नहीं है। साधारणतया एकही प्रकार के वृक्ष जब इकट्ठे गुञ्जान झुंडों में उगते हैं तो सब कमजोर रहते हैं। इनमें से किसी को जरा अलग बो दो तो बहुत मजबूत और मोटा हो जाता है। यही दशा जातियों की है। कश्मीर के विषय में कहते हैं:—

अगर फिरदोस बर—रूए जमीनस्त,
हमीनस्तो—हमीनस्तो—हमीनस्त।

अर्थात् यदि पृथ्वी (भूलोक) पर स्वर्ग है तो, यही है, यही है, यहीं है।

किन्तु वह कश्मीरी लोग जो अपने फिरदोस (Happy Valley) अर्थात् स्वर्ग को छोड़ना पाप समझते हैं, निर्बलता, निर्धनता और अज्ञानता में प्रसिद्ध हो रहे हैं, और

वह बहादुर कश्मीरी पंडित-जो इस पहाड़ी (फिरदौस) से बाहर निकले, मानो सचमुच स्वर्ग (फिरदौस) में आगये। उन्होंने, जहां गये, अन्य भारतवासियों को हर बात में मात कर दिया। उनमें से सब ऊँचे २ पदाधिकार पर बिराजित हैं। जब तक जापानी जापान में बन्द रहे निर्बल थे, और अशक्त थे, किन्तु जब वे अन्य देशों में जाने लगे, वहां की वायु लगी, बलवान् हो गये, यूरप के निर्धन गरीब और प्रायः अधम स्थिति के लोग जहाज़ों पर सवार हो कर अमेरिका जा बसे। अब ये लोग दुनियां की सब से बलिष्ठ शक्ति हैं। कुछ भारतवासी भी बाहर गये। जब तक अपने देश में थे, कुछ पूछ न थी, अन्य देशों में गये तो उन बड़ी बड़ी जातियों में भी प्रथम वर्ग में गिने गये और बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

पानी न बहे तो उसमें बू[1] आये,
खन्जर न चले तो मोरचा[2] खाये।
गर्दिश[3] से बढ़ा मिहर[4] व मः[5] का पाया[6],
गर्दिश से फलक[7] ने औज[8] पाया।

जैसे वृक्ष सब रुकावटों (बाधाओं) को काट कर अपनी जड़ें उधर भेज देता है जिधर जल हो, इसी तरह अमेरिका जर्मनी, जापान, इंगलैंड के लोग समुद्रों को चीर कर, पहाड़ों को काट कर, रुपया खर्च कर के, सर्व प्रकार के कष्ट झेल कर वहां वहां पहुँचे, जहांसे थोड़ा बहुत, चाहे

१ दुर्गंध। २ जंग। ३ भ्रमण। ४ सूर्य। ५ चन्द्र। पदवी। ७ आकाश, द्युलोक। ८ ऊंचा पद।

किसी प्रकार का भी ज्ञान प्राप्त हो सका। यह एक कारण है उन देशों की उन्नति का। अब और सुनिये।

जाँनिसारी—प्राणसमर्पण।

एक जापानी जहाज़ में कुछ भारतवासी विद्यार्थी सवार थे। जहाज़ में जो इस वर्ग के प्रवासियों को खाने को मिला वह किसी कारण विशेष से उन्होंने नहीं लिया। एक निर्धन जापानी विद्यार्थी ने देखा कि भारतवासी भूखे हैं। सब के लिये दूध और फलादि खरीद कर लाया और सामने रख दिया। भारतवासियों ने पहले तो अपने देश की रीति के अनुसार उसे अस्वीकार किया और पश्चात् खा लिया। जब जहाज़ से उतरने लगे तो धन्यवाद के साथ वे उन वस्तुओं का मूल्य देने लगे। जापानी ने न लिया। किन्तु रोकर यूं प्रार्थना करने लगा "जब भारतवर्ष में जाओ तो कहीं यह खयाल न फैला देना कि जापानी लोग ऐसे नालायक हैं कि उनके जहाजों पर छोटे दर्जे के प्रवासियों के लिये खाने पीने का यथोचित प्रबन्ध नहीं है।" ज़रा खयाल कीजियेगा, एक निर्धन प्रवासी विद्यार्थी, जिसका जहाज़ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, वह अपना निजका द्रव्य इस लिये अर्पण कर रहा है कि कहीं कोई उसके देश के जहाज़ों को भी बुरा न कहे। यह विद्यार्थी अपने जीवन को देश से पृथक नहीं मानता। सारे देश का जीवन को अपना जीवन वर्त्ताव में अनुभव कर रहा है। क्या स्वदेशभक्ति है! क्या प्राण समर्पण है! यह है व्यावहारिक अभेद-अद्वैत! यह है नक़द धर्म! इस क्रियात्मक वेदान्त के विना उन्नति और कल्याण का कोई उपाय नहीं है।

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये,
जीता है वह जो मर चुका इन्सान[1] के लिये।

आपको याद होगा कि जापान में जब जरूरत पड़ी थी कि रूसियों के बेड़े को रोकने के लिये कुछ जहाज समुद्र में डुबो दिये जाँय, तो राजा मिकाडो ने कहा कि, "मैं प्रजा में किसी को विवश नहीं करता किन्तु जिनको ऐसे जहाजों के साथ डूबना स्वीकार है, वे खुद स्वयंसेवक बन कर अपनी अर्जियां पेश करें। हजारों अर्जियां आवश्यकता से भी अधिक एकदम आगई। अब इनमें चुनाव की जरा दिक्कत थी। तिस पर जापानी युवकों ने अपने शरीर से रुधिर निकाल कर उससे प्रार्थना पत्र लिख कर पेश किये कि शीघ्र स्वीकार हो जाँय। अन्त में रुधिर से लिखी हुई अर्जियों को अधिक मान दिया गया। जब जहाजों के साथ ये लोग डूब रहे थे तो इनमें दो एक कप्तान यदि चाहते तो अपनी जान बचा भी सकते थे। किसीने कहा "कप्तान साहब आप काम तो कर चुके अब जान बचाकर जापान चले जाओ"। तो मौत की हँसी उड़ाते हुए कप्तान साहब ने तिरस्कार से उत्तर दिया "क्या मैं ने वापिस जाने के लिये यहां आने की अर्जी दी थी?"

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। गीता १५। ६

अर्थात् जहां जाकर फिर कोई नहीं लौटता है, वह मेरा परम धाम है।

शूर वीरता का अर्थ यह नहीं है कि वापिस लौटा जाय।

ईंजा जुज़ीं कि जाँ पसपारन्द चारा नेस्त।

अर्थात् यहां सिवाय जान देने के कोई उपाय नहीं।

---

[1] मनुष्य

शेर सीधा तैरता है, वक्ते-रफ्तन् आब में।

अर्थात् पानी में चलते समय शेर सीधा तैरता है।

यह है नक़द धर्म, यह है क्रियात्मक अर्थात् आचरण में लाया हुआ वेदान्त।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। गीता २।२३

मुझको काटे कहां वह तलवार ?
दाग दे मुझ को कहां वह नार ?
गर्क मुझ को करे कहां यह पानी !
बाद में ताब कब सुखाने की ?
मौत को मौत आ न जायगी,
कस्द मेरा जो करके आयगी।

अर्थात् कहां है वह तलवार जो मुझे मारे ? कहां है वह अग्नि जो मुझे जलादे ? कहां है वह जल जो मुझे डुबो दे ? कहां है वायु में शक्ति जो मुझे सुखा दे ? मृत्यु जब मेरी अभिलाषा करके आवेगा, तो उसका ही मृत्यु हो जायगा।

शास्त्रीय शोध के लिये अमेरिका में जीवन्त मनुष्य के शरीर पर घाव लगाने का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी। अनेक नवयुवक अपनी छातियां खोल कर खड़े हो गये कि लो चीरो, हमें काटो, इञ्च २ कर के हमारा प्राण जाय, हमारे जीवन्त शरीर पर घाव लगाना [Vivesection] हज़ार बार मुबारक है, यदि इससे शास्त्र की प्रगति हो और दूसरों का कल्याण हो। अब इसे हम प्रेम कहें कि वीरता ? यह है नक़द धर्म, अर्थात् व्यावहारिक या क्रियात्मक वेदान्त। यही है सर्वात्मभाव।

संयुक्त संस्थानों के अध्यक्ष, एब्राहम लिङ्कन के संबंध में कहा जाता है कि एकबार जब अपने मकान से दरबार

को आ रहा था, मार्ग में क्या देखता है कि एक शूकर कीचड़ में फसा हुआ अधमरा हो रहा है। बहुत ही प्रयत्न कर रहा है किन्तु किसी तरह निकल नहीं सकता, और दुःख से चिल्ला रहा है। प्रेसिडेन्ट (अध्यक्ष) से देखा न गया। सवारी से उतर कर शूकर को बाहर निकाला और उसका प्राण बचाया। सब वस्त्रों पर कीचड़ के छींटे पड़ गये, किन्तु परवाह न की और उसी स्थिति में दरबार में आया। लोगों ने पूछा और जब उपरोक्त घटना का पता लगा तो सब ने बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा कि आप बड़े दयालु और ईश्वर भक्त हैं। अध्यक्ष ने कहा कि बस, अधिक मत बोलो, मैं ने दया का कोई कार्य नहीं किया। उस शूकर के दुःख ने मुझे दुःखित कर दिया इस लिये मैं तो केवल अपना ही दुःख दूर करने के लिये उस शूकर को निकालने गया था। वाह, कैसा विश्वव्यापी प्रेम है! कितनी विशाल सर्वात्म-भावना है?

खूं रगे—मजनूं से निकला फस्द लैली की जो ली।

अर्थात् लैली के शरीर की नस खोलते ही मजनूं के शरीर से रुधिर बहने लगा। कैसी अनुभवात्मक एकता है!

पत्ती के फूल की लगा सदमा नसीम का,
शबनम के क़तरे आंख से उनके टपक पड़े।

अर्थात् पुष्प की पत्ती को ठंडी वायु लगते ही तेरे नेत्रों में हिमबिन्दु दिखाई पड़े।

नक़द धर्म, जीवन्त धर्म, सनातन धर्म का तत्त्व यह है कि तुम समस्त देश के आत्मा को अपना आत्मा समझो। धर्म का यह तत्त्व जिन देशों में व्यवहार अर्थात् बर्ताव में आता है, वे उन्नति कर रहे हैं, जिन जातियों में नहीं आया

वे गिर रही हैं। अपने देश के विषय में अब एक बात बड़े खेद से कहनी पड़ेगी। इन दिनों हाँगकाँग में सिक्खों की फौज़ है, उसके पहले पठानों की फौज़ थी। हाँग काँग में सिक्खों को, (हमें ठीक याद नहीं) शायद एक पौंड प्रत्येक मनुष्य को वेतन मिलता है और साधारण फौजी सिक्खों को इससे भी कम, शायद दस रुपया (दो तिहाई पौंड) मासिक वेतन मिलता है। हाँग काँग में पठानों को गोरों के बराबर प्रति व्यक्ति तीन २ पौंड (हमें ठीक याद नहीं) मिलता था। चीन के युद्ध के समय जब सिक्ख लोग वहां पर गये तो पठानों का यह तिगुण से भी अधिक वेतन उनसे सहा न गया। ब्रुटिश पार्लमेन्ट में उन्होंने प्रार्थनापत्र भेजे कि पठानों को जो तीन २ पौंड मिलता है क्यों नहीं आज कलह के दो तिहाई पौंड के स्थान पर हमें एक पूरा पौंड मासिक दिया जाता, और उनकी जगह भरती कर लिया जाता? हिन्दुस्तान सरकार और विलायत सरकार में इन प्रार्थना पत्रों के फिरने घूमने के बाद पठानों से पूछा गया कि क्या तुम लोगों को तीन पौंड के स्थान पर एक पौंड वेतन लेना स्वीकार है? एक पठान ने भी इसको अंगीकार नहीं किया। अन्त में पठानों की सब फौज़ मौकूफ की गई। सब पठान आजीविका रहित होगये। भोले सिक्खों ने इतना न देखा कि अन्त में यह पठान भी हमारे ही देश के हैं। यह सहानुभूति न आई कि इनकी आजीविका मारी गई। दया न आई कि भाइयों का गला कट गया। हाय! ईर्ष्या और देश की फूट! यह भूखों मरते पठान आजीविका की शोध में अफरिका को गये और शुमाली देश में मुल्ला के साथ होकर इन्हीं सिक्खों से लड़े। इस युद्ध में बिना लड़े ही केवल जल वायु के कठोर प्रभाव ही से सिक्खों की वह गति हुई कि

ईश्वर बचावे इनको ! लकवा होगया, गर्दनें मुड़ गईं, शरीर सुख गये ज्वर आदि ने निढ़ाल कर दिया। सच कहा है जो औरों की मौत का उपाय करता है वह आपही उस उपाय से मरता है।

करदनी ख्वेश से आमदनी पेश,
चाहकन रा चाह दरपेश।

अर्थात् अपनी करणी आप भरणी। अर्थात् यथा कर्म तथा फल। जो मनुष्य खड़ा खोदता है वह आप गिरेगा।

जापान में एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी शिक्षा पाता था। सिल्प-विद्या की एक पुस्तक पुस्तकालय से वह मांग कर ले आया। बाकी लेख या उसके भावार्थ को तो नकल कर उतार लिया किन्तु मशीनों (कलों) के नकशों या चित्रों की नकल न कर सका। अब यह न सोचा कि और लोग भी इस पुस्तक से लाभ उठानेवाले हैं। यह न खयाल किया कि इस चेष्टा से मेरे देश की अपकीर्ति होगी। झट पुस्तक से वे पन्ने जिन पर चित्र थे फाड़ लिये और पुस्तक वापिस कर दी। पुस्तक बहुत बड़ी थी, भेद न खुला, किन्तु छुपे कैसे ? सत्य भी कभी छुपता है ? एक दिन एक जापानी विद्यार्थी उसके कमरे में आया, मेज पर उस पुस्तक के फटे हुए पन्ने पड़े थे। देखकर उसने अफसर को सूचना देदी और वहां नियम हो गया कि अब किसी हिन्दुस्तानी विद्यार्थी को कोई पुस्तक न दी जाय। डूब मरने का स्थान है ! एक तो आपने उस जापानी विद्यार्थी की बात सुनी जो जहाज़ पर हिन्दुस्तानी लोगों के लिये खाना लाया था, और एक इस हिन्दुस्तानी की करतूत देखी। जापानी अपना सर्वस्व दे देने को तैय्यार है कि जिससे अपने देश पर कलंक न आ जाय। और

हिन्दुस्तानी विद्यार्थी अपना ही स्वार्थ चाहता है, समस्त देश चाहे बदनाम हो—कलंकित हो। हाथ (शरीर से) यह नहीं कह सकता कि मैं अकेला या (सब से) पृथक हूं। मेरा रुधिर और है और सारे शरीर का रुधिर और है। इस भेद भाव से यह खयाल उत्पन्न होगा कि हाय! कमाऊं तो मैं और पले सारा शरीर। इस स्वार्थ सिद्धि के लिये हाथ के लिये केवल एकही उपाय हो सकेगा, वह यह है कि जो रोटी कमाई है, उसे सारे शरीर के लिये मुँह में डालने के बदले हाथ अपनी हथेली पर बाँध ले, या नाखूनों में घुसेर ले। पर क्या यह स्वार्थपरायणता की चाल लाभदायक होगी? अलबत्त एक उपाय और भी है कि शहद की मक्खी या भिड़ से हाथ अपनी उंगलियाँ डसवाले, इस तरह सारे शरीर को छोड़ कर अकेला हाथ स्वयं बहुत मोटा होजायगा, किन्तु यह मोटापन तो सूजन रोग है, बीमारी है। इसी तरह जो लोग जातीय हित अपना हित नहीं समझते अपने आत्मा को जाति के आत्मा से भिन्न मानते हैं, ऐसे स्वार्थियों को सिवाय सूजन रोग के और कुछ हाथ नहीं आता। हाथ वही शक्तिमान और बलिष्ठ होगा जो कान, नाक, आंख पैर आदि सारे शरीर की आत्मा को अपनी आत्मा मान कर आचरण करता है, और मनुष्य वही फले फूलेगा जो सारे राष्ट्र के आत्मा को अपनी आत्मा मान लेता है।

अमेरिका का कुछ विस्तृत वृत्तान्त।

अमेरिका में पहली आश्चर्य की बात यह देखी गई कि एक जगह पति तो प्रोटेस्टेंट मत का था और पत्नी रोमन कैथोलिक। चित्त में यह विचार आया कि इस प्रकार के संप्रदाय भेद वाले लोग हमारे भारत में तो (जैसे आर्य-

समाजी और सनातनधर्मी) एक मोहल्ले में कठिनता से काटते हैं, इन पतिपत्नी का एक घर में कैसे निर्वाह होता होगा? पूछने से मालुम हुआ कि बड़े प्रेम से रहते सहते हैं। रविवार के दिन पति पहले पत्नी को उसके रोमन कैथोलिक गिरजा में साथ जाकर छोड़ आता है, उसके बाद वह स्वयं अपने दूसरे गिरजा में जाता है। पति से बात चीत हुई तो वह कहने लगा कि जी! मेरी पत्नी के धर्म का प्रश्न तो उसके और परमात्मा के मध्य है। मैं कौन हूं हस्तक्षेप करने वाला? मेरे साथ उसका सम्बन्ध नितान्त सरल है,परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध की वह जाने। क्या खूब!

अमेरिका में राष्ट्रीय एकता के सामने मतभेद की कुछ वास्तविकता ही नहीं। भारत वर्ष का आर्य समाजी हो, सिक्ख हो, मुसल्मान हो,अमेरिका में हिन्दू ही कहलाता है। उनके हृदय में राष्ट्रीय एकता इतनी समा रही है, कि वे हमारे यहां के इतने भारी मतभेदों को भूल जाने में जरा देर नहीं लगाते। भारत वर्ष के कुछ धर्मानुयायी यदि यह जानते कि अन्त में अन्य सभ्य देशों में हमें हिन्दू, भारतवासी ही कहलाना है, तो हिन्दू शब्द पर इतने झगड़े और इस नाम से इतनी लज्जा न मानते।

उस देश के शक्तिशाली होने का एक कारण यह भी है कि वहां ब्रह्मचर्य है। मनुष्यबल को व्यर्थ नहीं खोने देते। सामान्यतः २० वर्ष पर्यंत तो लड़के लड़की को विचार भी नहीं आता कि विवाह क्या वस्तु है। इसका एक कारण विचार पूर्वक देखने से यह मालूम हुआ कि बालक और बालिकायें बच्चेपन से इकट्ठे खेलते कूदते, एक छत के नीचे लिखते पढ़ते, और साथ २ रहते सहते हैं, और फिर साथ २

ही कालिजों में शिक्षा पाते हैं। अतएव आपस में भाई बहिन का सा सम्बन्ध बना रहता है और अन्तःकरण शुद्धता और पवित्रता से भरे रहते हैं। वहां लड़कियों के शरीर लड़कों के शरीर के समान ही बलवान होते हैं, इस लिये युवावस्था में उनकी सन्तति भी बलवान होती है। यदि पुरुष बलवान् है और स्त्री दुर्बल हो तो इसका आधा प्रभाव सन्तान पर होगा।

एक बार लेकजिनिवा (Lake Geneva) के तट पर जब राम रहता था, एक १३ वर्ष के वय की बालिका तैरते २ ३ मील तक चली गई। किश्ती पीछे २ थी, कि यदि डूबने लगे तो सहायता की जाय। परन्तु कहीं सहायता की आवश्यकता न पड़ी। जब लड़कियों की यह दशा है तो भविष्य में उनकी सन्तानें क्यों बलवान न होंगी? और जब शरीर में स्वास्थ्य है तो अन्तःकरण में क्यों पवित्रता न होगी?

उनके ब्रह्मचर्य का और भी एक कारण है। अशक्ति से पाप होता है, और अजीर्ण से अशुद्धि होती है। जब मेदा ठीक न हो तो चिन्ता और फिक्र स्वाभाविक ही पीछे लगजाते हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो बात बात में क्रोध आता है। वेद में लिखा है कि बलहीन इस आत्मा को नहीं जान सकता। "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"।

कमजोर की दाल ईश्वर के घर में भी नहीं गलती। जिसके अन्दर शारीरिक और आत्मिक बल नहीं है, वह ब्रह्मचर्य का कब पालन कर सकता है? और यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य से रहित मनुष्य शारीरिक और आत्मिक बल से रहित हो जाता है।

वहां कालिजों में क्या स्थिति है? बी. ए. एम. ए. और

डाक्टर ऑफ फिलासाफी की उपाधि [डीगरी] पाने पर्यन्त विद्यार्थियों को शारीरिक व्यायाम का शिक्षण साथ २ दिया जाता है। युद्धविद्या, कृषिविद्या, लोहारी, बढ़ाईपन, मेमार का काम बराबर सिखाया जाता है। मनुष्य के अन्दर तीन बड़े महकमे [कार्यालय] हैं। एक कर्मेन्द्रिय, दूसरा ज्ञानेन्द्रिय और तीसरा अन्तःकरण, इनको अंगरेजी में 'ह' कार से आरम्भ, होनेवाले तीन शब्दों में वर्णन कर सकते हैं। हैंड [Hand-कर्मेन्द्रिय] हेड, [Head-ज्ञानेन्द्रिय] और हार्ट [Heart-अन्तः करण)।

ज्ञानेन्द्रियों से बाहरी ज्ञान अन्दर जाता है और बाह्य पदार्थ अन्दर असर करते हैं। कर्मेन्द्रियों (जैसे हाथ पैर] से अन्दर की शक्ति बाहर प्रभाव डालती है। कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां यदि परस्पर योग्य प्रमाण से बढ़ती रहें और उन्नति करती जाँय तो उत्तम है। यदि बाहर से ज्ञान को ठूंसते जाँय और अन्दर के ज्ञान तथा बल को बाहर न निकालते रहें, तो दशा वैसी ही हो जाती है कि मनुष्य खाता तो रहे किन्तु उसके शरीर से कुछ बाहिर न निकल सके। इसका परिणाम होगा बौद्धिक अजीर्ण और आत्मिक, कब्ज़। यह शिक्षा नहीं है, रोग है।

अमेरिका में साधारण रीति से युनिवर्सिटि की शिक्षा का यह मन्तव्य और उद्देश्य है कि स्वदेश की वस्तुएँ काम में लाई जाँय, अर्थात् जमीन, खानें, वनस्पति, और अन्य पदार्थ इत्यादि का उपयोग और अधिक मूल्यवान बनाना मालूम हो जाय। जितने कला कौशल्य सिखलाये जाते हैं वे प्रत्यक्ष व्यवहार में उपयोगी और लाभदायक होते हैं। कोई विद्यार्थी रसायनशास्त्र निरर्थक नहीं पढ़ेगा। यदि

उसने रसायनशास्त्र को व्यावहारिक उपयोग में लाने की कला जैसे कि रासायनिक शिल्पविज्ञान [Chemical Engineering] इत्यादि भी साथ न सीखना हो।

एक धार्मिक कालेज में राम का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के बाद कालेज के लोगों ने अपनी जंगी कवायद [सैनिक व्यायाम] दिखलाई और कालेज के सैनिक गीतों से जय पुकारते २ व्याख्याता की सलामी की। राम ने पूछा "यह क्या? कालिज तो धार्मिक और शिक्षा सैनिक?" प्रिन्सपल साहब ने उत्तर दिया, "धर्म के अर्थ हैं देह और देहाध्यास को हज़रत ईसा के समान सूली पर चढ़ा देना, अभिमान को मिटा देना, जान को देश निमित्त हथेली में उठाये फिरना। और यह प्राण समर्पण और सच्ची शूरवीरता की आत्मा सैनिक शिक्षा से आती है।

अब कोमल मनोवृत्ति और अन्तःकरण की पवित्रता की शिक्षा की स्थिति देखिये। एक विश्वविद्यालय [युनिवर्सिटी] में राम गया जो केवल विद्यार्थियों और अध्यापकों की कमाई से चल रही थी। विद्यार्थी लोग वहां शुल्क [फीस] इत्यादि कुछ नहीं देते। अन्य शिक्षाओं के अतिरिक्त विद्यार्थी लोग, अध्यापकों के अधीन कालिज की ज़मीन पर या यंत्रों पर काम करते हैं। अध्यापक नवीन २ प्रयोग और परिशोध करते हैं और विद्यार्थियों को सिखाते हैं। ज़मीन के अनोखे ढंग की और निराली उत्पन्न और नवीन कारीगरी की आमदनी से सब खर्चे निकलते हैं। राम की उपस्थिति में एक कमरे में विद्यार्थियों का आपस में झगड़ा हो पड़ा। प्रिन्सिपल के पास यह मुक़द्दमा गया। प्रिन्सिपल ने उस कमरे में सब काम बन्द करा दिया, और

प्यानो बाजा बजाना शुरू करा दिया । १५ मिनिट में मुकद्दमा फैसला हो गया. अर्थात् परस्पर निपटारा होगया । वाह ! जिनके अन्दर शान्ति रस भरा है उनके अन्दर के मेल और शान्ति को उकसाने के लिये बाहरी संगीत ही काफी बहाना हो जाता है । और कैसा प्रबन्ध है, वायु में सत्वगुण भर दिया, दिलों की खटपट आपही रफ़ा हो गई ।

शिकागो विश्वविद्यालय के बी० ए० श्रेणि के एक विद्यार्थी ने राम के कुछ तत्त्वज्ञान के व्याख्यानों पर नोट लिये और थोड़े दिनों में अपनी ओर से घटा बढ़ा के उनकी एक पुस्तक बनाकर विश्वविद्यालय के स्वाधीन की । इस विद्यार्थी को तत्काल एक श्रेणि की वृद्धि करदी । यह नहीं देखा कि इस ने मिल और हेमिल्टन की पुस्तकों से अपने मस्तिष्क को लेटरबेग (पत्रों की थैली) बनाया है कि नहीं । अवश्यमेव वास्तविक शिक्षा का आदर्श यह है कि हम अन्दर से कितनी विद्या बाहर निकाल सकते हैं, यह नहीं कि बाहर से अन्दर कितनी डाल चुके हैं ।

राम एक समय वहां शास्ता पर्वत के जंगलों में रहता था । कुछ मनुष्य भी मिलने आये । उनके साथ एक बारह वर्ष की लड़की भी थी । सब राम के उपदेश को ध्यानपूर्वक सुनते रहे, किन्तु थोड़ी देर के लिये लड़की अलग जाकर बैठ गई । जब वापिस आई तो एक कागज़ पेश किया । यह क्या था ? राम का सारा उपदेश, जिसे वह अंगरेजी कविता में पिरोलाई । बाद में यह कविता वहां के वर्त्तमानपत्रों में छप भी गई । बालकों की यह बुद्धि और योग्यता उनको स्वतन्त्र रखने का परिणाम है । मनुष्य चाहे बच्चा हो या वृद्ध वह केवल वार्तालाप करने वाला पशु कहलाता है । पशुवृत्ति और

वाक्शक्ति अर्थात् बुद्धिमता ये दो अंश जो मनुष्य में हैं, उस में बुद्धिमता सवार है और पशुवृत्ति सवारी का घोड़ा। जब हम बालकों की विचारशक्ति को प्रेम से समझाकर उनसे काम नहीं लेते, किन्तु बुरा भला कहकर उनपर शासन करते हैं तो मानों पशुवृत्ति के घोड़े को लाठी के प्रभाव से बुद्धिमता के सवार के तले से निकाल ले जाना है। ऐसी अवस्था में बच्चे के अन्दरवाले को क्रोध क्यों न आवे ? बालकों को डाटना केवल पशुवृत्ति से काम लेना है और उनमें उस अंश (बुद्धिमता) का अपमान करना है, जिसके कारण मनुष्य संसार में श्रेष्ठ कहलाता है। सख्ती करना या झिड़कना उन के भीतर की श्रेष्ठता का अपमान करना है। विना समझाये या विना कारण बतलाये बालक पर किसी प्रकार की निषेधक आज्ञा करना कि "ऐसा मत करो, वैसा मत करो" उसे उस काम करने की उत्तेजना स्वतः देना है। जिस समय परमात्मा ने हज़रत आदम को आज्ञा दी कि "अमुक वृक्ष का फल मत खाना" तो उसी निषेध के कारण हज़रत आदम के दिल में बुरा विचार उत्पन्न हो आया। उस स्वर्गोद्यान (बाग़े—जिन्नत) में हज़ारो वृक्ष थे किन्तु जब निषेध किया गया कि "यह न खाना" तो स्वतः उसके खाने की इच्छा उत्पन्न हुई। बहुत से आवश्यक विज्ञापनों का वर्त्तमान पत्रों में यह शीर्षक (heading) होता है "इसको मत पढ़ना।"

किसी मनुष्य ने एक महात्मा से मंत्र चाहा। महात्मा ने मंत्र बतला कर कहा "तीन माला जपने से मंत्र सिद्ध हो जायगा। परन्तु शर्त यह है कि सावधान, माला जपते कहीं बन्दर का खयाल न आने पाय"। थोड़े अनुभव के बाद वह बेचारा साधक महात्मा से आकर कहने लगा, "महाराज जी, बन्दर

मेरे तो कहीं स्वप्न में भी न था, किन्तु आपके 'सावधान' करने से अब तो बन्दर का ख़याल मुझे छोड़ता ही नहीं।" चित्त में यह उलटा प्रभाव डालने वाली शिक्षा का ढंग अमेरिका में नहीं। बालकों की शिक्षा वहां शिशुशिक्षा (किंडर गार्टन) की पद्धति पर होती है। अध्यापक बालकों के साथ खेलते कूदते, गाते, नाचते पढ़ाते चले जाते हैं, और बालक हँसी के साथ अभ्यास करते जाते हैं। उदाहरणार्थ बालकों को जहाज़ का पाठ पढ़ाना है। एक एक लकड़ी का जहाज़ बना हुआ प्रत्येक बालक की कुरसी के आगे रक्खा हुआ है और बांस की फांकें आदि पास धरी हैं जिनसे नया जहाज़ बना सके। बालकों के साथ मिले हुए अध्यापक या अध्यापिका कहती है "हम तो जहाज़ बनायँगे, हम तो जहाज़ बनायँगे।" बच्चे भी देखा देखी कहने लग पड़ते हैं, "हम भी जहाज़ बनायँगे" ये, लो सब बैठ गये, एक बालक ने जहाज़ बना दिया, दूसरे ने सफलता पा ली, फिर तीसरे ने बना लिया। जिस किसी को ज़रा देर लगी अन्य बालकों ने या अध्यापिका ने सहायता देदी। फिर बालकों ने बड़ी रुचि के साथ अध्यापिका से स्वयं प्रश्न करने शुरू किये। जहाज़ के इस भाग का क्या नाम है? वह भाग क्या कहलाता है? यह क्या है? वह क्या है? अध्यापिका मस्तूल आदि सब का हाल और नाम बतलाती जाती है, और बालक इस प्रकार जहाज़ के सम्बन्ध की सब बातें मानो अपने आप ही सीख गये। हमारे यहां बालक पढ़ते हैं " K के ee डबल-ई l एल = कील (Keel) माने जहाज़ की पेंदी" ऐसा रटते २ सिर में कील ठुक गई, मगर बालक को ख़बर भी न हुई कि कील, क्या चीज़ है, और जहाज़ कैसा होता है? वहां 'पदार्थ' की पहिचान पहले कराई जाती है, 'पद' [नाम] पीछे बतलाया जाता है। यहां नाम [पद]

पहले याद कराते हैं, [पदार्थ] विषय का चाहे सारी आयु पता न लगे। वहां बालक प्रश्न करते रहते हैं (जैसा कि सब जगह बालकों का स्वभाव) और अध्यापक का कर्तव्य है उनको पूरे २ उत्तर देते जाना। वहां इतने बड़े अध्यापकों को लज्जा नहीं आती कि छोटे २ बच्चों को प्रश्न पूछ २ कर हैरान करते हैं। पढ़ना वह क्या है, जिसमें आत्मिक आनन्द न हो। यहां शिक्षक को देख कर बालकों का मारे भय से प्राण जाता है, वहां बालकों का प्रेम जो शिक्षकों से है, माता पिता से नहीं। जो प्रसन्नता उन्हें शाला में है घर में नहीं। शालाओं में वहां शुल्क [फीस] नहीं लिया जाता और पुस्तकें सब को मुफ्त दी जाती हैं।

अब वहां की दुकानों की स्थिति देखिये। शिकागो में राम एक दुकान पर बुलाया गया, जिसके फर्श का क्षेत्रफल एक तिहाई गाज़ीपुर से कम न होगा और दुकान के नीचे ऊपर पच्चीस मंजलें थीं, जिस मंजिल पर जाना चाहो, बालाकश [Elevator—ऊपर उठाने वाली कल] झट ले जायगी। हर मंजिल में नवीन प्रकार का माल भरा हुआ था। करोड़ों के ग्राहक प्रतिदिन आते हैं, किन्तु दुकानवालों का बर्ताव सब के साथ एक समान है, चाहे लाख का ग्राहक हो चाहे पांच पैसे का, मूल्य एक ही होगा, जो प्रत्येक वस्तु के ऊपर लिखा है। इससे कौड़ी कम नहीं, कौड़ी अधिक नहीं, और हसमुख हुए सब के साथ (यहां तक कि जो कुछ भी न खरीदे और दस वस्तुओं के दाम पूछ २ कर चला जाय उसे भी) द्वार तक छोड़ने आते हैं और अपने नियमानुसार शिष्टाचार से नमस्कार करते हैं। इस बड़ी दुकान ही पर नहीं, साधारण दुकानों पर भी यही बर्ताव है।

अमेरिका, जापान, इंग्लैंड, जर्मनी में पुलिस अत्यन्त सभ्य और प्रजा की सेवक है । प्रजारक्षक है, प्रजाभक्षक नहीं । कुछ श्रोतागण शायद दिल में कह रहे होंगे कि बस बन्द करो, अमेरिकन लोगों की बहुत प्रशंसा करली । उनके गीत कहां तक गाते जाओगे ? क्या हमें अमेरिकन बनाया चाहते हो ? इस भ्रांतिवालों से राम कहता है कि क्या भारतवासी अमेरिकन बने ? दूर ! दूर ! दूर ! दूर हो यह विचार जिसके दिल में भी आया हो । परे हटा दो यह आशा जिस किसी ने कभी की हो । राम का ऐसा विचार कदापि नहीं हुआ, न होगा । अलबत्ता कुछ बातें उन देशों से लेनी हम लोगों के लिय ज़रूरी हैं । यदि हम विनाश के प्रहार से बचना चाहते हैं, यदि हमें हिन्दू बने रहना स्वीकार है, तो हमें उनके कला कौशल्य ग्रहण करने होंगे, चाहे वे किसी मूल्य पर मिलें । जब राम अमेरिका में रहा तो सिर पर पगड़ी हिन्दुस्तानी थी किन्तु बाजारों में बर्फ़ होने के कारण पाओं में जूता उसी देश का था । लोगों ने कहा "जूता भी हिन्दुस्तानी क्यों नहीं रखते ?" राम ने उत्तर दिया, "सिर तो हिन्दुस्तानी रक्खूंगा किन्तु पाँव तुम्हारे लेलूंगा । राम तो चित्त से यह चाहता है कि आप हिन्दुस्तानी ही बने रह कर अमेरिकन आदि से बढ़ जाँय और यह उन राष्ट्रों से दूर रहते हुए नहीं हो सकता । आज विद्युत् बाष्प, रेल तार इत्यादि देश और काल को मानों हड़प कर गये हैं । दुनियां एक छोटा सा टापू बन गई है, समुद्र मार्ग में विघ्नरूप होने के बदले राजमार्ग हो गया है । जिनको कभी भिन्न देश कहते थे वे नगर हो गये हैं । और पहले के नगर मानों गलियां बन रही हैं । आज यदि हम अपने तईं अलग थलग रखना चाहें और दूसरे राष्ट्रों से भिन्न मान कर अपने ही

ढाई चावल की खीचड़ी पकायें, आज बीसवीं शताब्दि में यदि हम मसीह से बीसवीं शताब्दि पहले के रीति और रिवाज़ बर्तें, आज यदि हम पाश्चात्य देशों के कला कौशल का मुकाबला करना न सीखें. आज यदि हम उधार धर्म के लड़ाई झगड़े छोड़ कर नक़द धर्म को न बर्तें, तो हम इस तरह से उड़ जायँगे जैसे देश और काल उड़ गये हैं। भारत वासियो। अपनी स्थिति को पहचानो।

> कञ्चन होवे कीच में विष में अमृत होय,
> विद्या नारी नीच में साँचो लीजे गोय।

जब भारत वर्ष में ऐश्वर्य था तो भारत वासियों ने अपने को कूपमंडक नहीं बना रक्खा था। जब पुष्कर में यज्ञ हुआ तो हबशी, चीनी और ईरानी राष्ट्रों के लोगों को निमंत्रण दिया गया। राजसू यज्ञ के पहिले भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पांडव दूर २ के विदेशों में गये। स्वयं रामचन्द्र जी मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार ने समुद्र पार जाने की मर्यादा बांधी।

> दोश अज मसजिद सूए मैख़ाना आमद पीरे मा,
> चीस्त यारा ने, तरीकत बाद अजी तदबीरे मा।

अर्थात् कल रात्रि हमारा गुरु मंदिर से मदिरागृह में आया। ऐ मर्यादा वाले लोगो, अब क्या युक्ति की जाय?

उन दिनों तो भारतवर्ष किसी अन्य देश के अधीन भी न था, किन्तु आज अन्य देशों के कला कौशल्य सीखने की वह आवश्यकता है कि इनके बिना प्राण जाता है। बस आज भारतवर्ष यदि जीना चाहता है तो अमेरिका यूरुप, जापान आदि बाहर के देशों से अपने आप को स्वयं खारिज न कर दें। बाहर की हवा लगने से जान में जान आ जायगी। हिन्दू बाहर जायेंगे तो सच्चे हिन्दू बन जायँगे।

बाहर जाने से अपने शास्त्र का सन्मान मालूम होगा, और बहुत अच्छी तरह से मालूम होगा, और शास्त्र बर्ताव में आने लगेगा। तुम अपने तईं नितान्त संसार से विरक्त बना नहीं सकते। जितना विदेशी लोगों से मुँह मोड़ा उतना उनके दास बन कर रहना पड़ा।

संकल्प बल।

पुराणों में सुना करते थे और पढ़ा करते थे कि अमुक ऋषि के वर या शाप से अमुक व्यक्ति की दशा बदल गई। योगवासिष्ठ में शिला (पत्थर) में सृष्टि दिखाने का उल्लेख आता है, किन्तु अमेरिका में ऐसे दृश्य आंखों के सामने प्रत्यक्ष गुजरे। युनिवर्सिटि के मकानों और हस्पतालों में इस प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं कि हजारों रोगी केवल संकल्प बल से अच्छे किये जाते हैं। प्रोफेसर की उत्तेजना से मेज का घोड़ा दीखना या जेम्स साहब का डाक्टर पाल होजाना (व्यक्ति का बदल जाना); पुराने जेम्सपन का उड़ जाना यह सब अपनी आंखों देखा।

संस्कृत में वेदान्त के असंख्य उत्तम ग्रंथ है जैसे दत्तात्रेय की अवधूत गीता, श्री शंकराचार्य के वेदान्त के स्तोत्र, अष्टावक्र गीता, योगवासिष्ठ के कुछ अध्याय। फारसी में सब से बढ़कर (तोहीद) अद्वैत का ग्रन्थ शम्स तब्रेज का है। उस से उतर कर मसनवी शरीफ, शेख अत्तार, मग़रबी वगैरह। किन्तु अमेरिका में वाल्ट व्हिटमन के "तृणपर्ण" (Leaves of Grass) बड़ा अद्वैत का उन्माद और निजानन्द लाते हैं, जो अवधूत गीता, अष्टावक्र गीता, शंकराचार्य के स्तोत्र, शम्स तब्रेज और बुल्लाशाह की कविता, बल्कि इनसे भी कहीं बढ़कर।

डट कर खड़ा हूँ खौफ से खाली जहान में,
[1]तस्कीने-दिल भरी है मेरे दिल में जान में।
सूंघे ज़माँ[2] मकाँ[3] हैं मेरे पैर मिस्ले-सग[4],
मैं कैसे आ सकूं हूँ कैदे-बयान[5] में।

हबशी गुलामों को स्वतंत्रता देने के लिये अमेरिका के आन्तर युद्ध के दिनों यह वाल्ट व्हिटमन प्रत्येक युद्ध में मरहम पट्टी करना, प्यासों को पानी पिलाना, मृत्युमुख पुरुषों को अपनी मुस्क्यानों से जान में जान लाना और इसी समय की अपनी नवीन काव्यकृति को रात दिन गाते फिरना उसके लिये खेल का काम था। इस रोने धोने की भीड़ में, घोर रणभूमि में, भीषण संग्राम में, व्हिटमैन ऐसा प्रसन्नचित्त और प्रफुल्लित फिरता था जैसे महादेवजी भूत प्रेत के घमसान में, या कृष्ण भगवान कुरुक्षेत्र की रणभूमि में। धन्य थे इन निरन्तर युद्धों के अधमुए जो ऐसे अवतार पुरुष के दर्शन करते मृत्यु को प्राप्त हुए।

शब हो हवा हो धूप हो तूफाँ हो छेड़ छाड़,
जंगल के पेड़ कब इन्हें लाते हैं ध्यान में ?
गर्दिश से रोजगार के हिल जाय जिसका दिल,
इन्सान होके कम है दरख्तों से शान में।

भावार्थः—चाहे रात्रि हो, चाहे हवा हो, चाहे धूप हो, चाहे आंधी और उसके झोंके, जंगल के वृक्ष इनकी कुछ परवाह नहीं करते। और समय के हेरफेर से जिसका चित्त अस्थिर हो जाय वह चाहे मनुष्य है, परन्तु वृक्षों की अपेक्षा तुच्छ है।

---

१ शान्ति। २ काल। ३ देश। ४ कुत्ते के समान। ५ उल्लेख के बन्धन में

इस प्रकार का ब्रह्मनिष्ठ अमेरिका में हेन्री थोरो भी हुआ है जो सच्चे ब्रह्मचारी या संन्यासी का जीवन एकान्त जंगलों में व्यतीत करता था। अलबत्त आलस्यसेवी साधु न था। अमेरिका का सब से बड़ा लेखक (एमर्सन) इस थोरो के सम्बन्ध में लिखता है कि, शहद की भिड़ उसकी चारपाई पर उसके साथ सोती हैं, किन्तु इस निडर प्रेम के पुतले को नहीं डसतीं। जंगल के सांप उसके हाथों और टांगों को चिमट जाते हैं, किन्तु इन्हें कंकण और आभूषण समझता हुआ इनकी परवाह नहीं करता। कैसा व्यालभूषण है!

मार्ग पर चलते २ एमर्सन ने पूछा "यहां के पुराने निवासियों के तीर कहां मिलते हैं, तो अपने स्वभाव के अनुसार झट जवाब दे दिया, "जहां चाहो" और इतने में झुक कर उसी स्थान से अपेक्षित तीर उठाकर दे दिया। दृश्यमान् जगत पर यह कितना महत्व का अधिकार है!

स्वयं एमर्सन जिनकी लेखनी ने अर्वाचीन जगत में नवीन चेतना फूँक दी, भगवद्गीता और उपनिषदों का न केवल अभ्यासी बल्कि उनको बहुत बड़ा आचरण में लाने वाला था। इसने अपने लेखों में उपनिषद् और गीता के प्रमाण कई एक स्थानों पर दिये हैं। और उसके निज के मित्रों की जुबानी मालुम हुआ कि उसके विचारों पर विशेषतः गीता और उपनिषदों का प्रभाव था। महात्मा थोरो अपने 'वाल्डन' नामक पुस्तक में लिखता है, "प्रातःकाल मैं अपने अन्तःकरण और बुद्धि को भगवद्गीता के पवित्र गंगाजल में स्नान कराता हूं। यह वह सर्वश्रेष्ठ और सर्वव्यापी तत्त्वज्ञान है कि इसको लिखे हुए देवताओं को वर्षों के वर्ष बीत गये, किन्तु इसके बराबर की पुस्तक नहीं निकली। इसके

समक्ष हमारा अर्वाचीन जगत अपनी विद्याओं और कला कौशल और सभ्यता के साथ तुच्छ और क्षुद्र मालूम देता है। इसकी महत्ता हमारे विचार और कल्पना से इतनी दूर है, कि मुझे कई बार ख़याल आता है कि शायद यह शास्त्र किसी और ही युग में लिखा गया होगा। एक और प्रसंग पर मिश्र के भव्य मीनारों का वर्णन करते हुए थोरो लिखता है कि,प्राचीन जगत के समस्त संस्मरणों में भगवद्गीता से श्रेष्ठ कोई संस्मरण नहीं है। यही भगवद्गीता और उपनिषदों की शिक्षा आचरण में आई हुई व्यावहारिक वेदान्त या नक़द धर्म हो जाती है। इसी को रगों पट्ठों में लाकर वे लोग उन्नति को प्राप्त हो रहे हैं। आपके यहां यह कीमती नोट मौजूद है, पर कागज के नोट से चाहे वह कितनी ही कीमती हो भूख नहीं जाती, प्यास नहीं बुझती; शरीर की ठंड नहीं दूर होती। इस हुंडी को भुना कर 'नक़द धर्म' में बदलना पड़ेगा। आज वे लोग इस नोट की कीमत दे सकेंगे। आज वहां पर हुंडी खरी हो सकती है। करो खरी।

जब सीता जी अयोध्या से बनवास को सिधारीं, तो उनके पीछे नगर की शोभा दूर हो गई, शोक विलाप फैल गया। प्रजा व्याकुल हो गई। राजा का शरीर छूट गया। रानियों को रोना पीटना पड़ गया। राजसिंहासन चौदह वर्ष तक मानो खाली रहा और जब सीता जी को समुद्र पार से लाने के लिये रामचन्द्रजी खड़े हो गये तो पक्षी (गरुड़ और जटायु) भी सहायता करने को तैय्यार हो गये, जंगल के पशु (बन्दर, रीछ, इत्यादि) लड़ने मरने के लिये सेवा में उपस्थित हो गये। कहते हैं कि अपनी छोटी सी शक्ति के अनुसार गिलहरियाँ भी मुंह में रेत के दाने

भर २ कर पुल बांधने के लिये समुद्र में डालने लगीं। वायु और जल भी अनुकूल बन गये। पत्थर भी सब समुद्र में डाले तो सीता के लिये अपने स्वभाव को भूल गये और डूबने के स्थान पर तैरने लगे।

> कुनम सद्सर फ़िदाए पाये-सीता।
> चे यकता सरचि दहता सरचि सीता॥

अर्थात् मैं सौ सिर सीता जी के पैरों पर भेंट कर दूंगा चाहे एक शिर का शिर हो, चाहे दस का, चाहे तीस का।

सीता से अभिप्राय अध्यात्म रामायण में है ब्रह्मविद्या। हम कहेंगे "असली ब्रह्मविद्या" (नक़द धर्म) को तिलाञ्जलि देने से भारत वर्ष में सर्व प्रकार की आपत्ति आई। क्या क्या विपत्ति नहीं आई? किस किस दुःख और रोग ने हमें नहीं सताया? हाय! यह सीता समुद्र पार चली गई। व्यावहारिक ब्रह्मविद्या को समुद्र पार से लाने के लिये आज खड़े तो हो जाओ और देखो समस्त संसार की शक्तियां आपस में शर्तें बांध कर तुम्हारी सेवा व सहायता करने के लिये हाथ जोड़े खड़ी हैं, सब के सब देवता और मलायक देवदूत सिर झुकाय हाज़िर खड़े हैं। प्रकृति के नियम शपथ खा २ कर तुम्हारी सहायता को कटिबद्ध हो खड़े हैं। अपने ईश्वरत्व में जागो तो सही और फिर देखो, कि होता है या नहीं।

> सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा,
> हम बुलबुलें हैं उसकी वह बोस्ताँ हमारा।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

विश्वास या ईमान ।

(ता०-१०-९-१९०५ को फैजाबाद के विक्टोरिया हाल में दिया हुआ व्याख्यान)

(स्वामीजी ने फरमाया कि व्याख्यान से पूर्व हम सबको ध्यान कर लेना जरूरी है । अर्थात् इस बात का ख्याल करें कि हम सब में एक ही आत्मा व्यापक है, एक ही समुद्र की हम सब तरंगें हैं, एक ही सूत्र (धागे) में हम सब माला के मोतियों के समान परोये हुए हैं । फिर कुछ समय तक शान्ति आच्छादित हो गई । सब ने मौन धारण कर लिया और श्री स्वामी जी तथा श्रोतागण इस ध्यान में डूब गये । तत्पश्चात् "ओ३म्" का ऊँचे स्वर से उच्चारण करके स्वामी जी ने अपनी वक्तृता इस प्रकार आरम्भ की ।)

वनस्पति विद्या [Botany] की यह एक साधारण कहावत है कि जून के महीने से वृक्ष फूल नहीं देते और अपने पत्तों को इस प्रकार शोभायमान करते हैं कि उनके सामने फूल मात हो जाते हैं । चाहे रंगत की दृष्टि से देखो चाहे सुगंध की दृष्टि से । रंग और गंध दोनों ही में वे पत्ते किसी दशा में न्यून नहीं होते—वरन् बल और शक्ति की दृष्टि से वे पुष्पों से भी श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि उन में पुष्पों की कोमलता और बलहीनता के स्थान पर बल और शक्ति होती है । इसका कारण क्या है ? इसका कारण वही "ब्रह्मचर्य" है ! अर्थात् पुष्पों का विवाह होता है, मगर वह पौधे, जो फूलते नहीं ब्रह्मचारी रहते हैं ।

जब यह बात वृक्षों में पाई जाती है, तो क्या मनुष्य में इसका विकास नहीं है ? हमारी दृष्टि सत्, परमेश्वर में

इस प्रकार जमनी चाहिये कि उसके सामने इस जगत् के पदार्थ सब के सब मिथ्या दिखाई देने लगें।

[1]हूर पर आँख न डाले कभी [2]शैदा तेरा।
सब से [3]बेगाना है, ऐ दोस्त [4]शिनासा तेरा।

राम इसी अवस्था का नाम अभ्यास, निश्चय, श्रद्धा, विश्वास वा इसलाम बतलाता है।

असभ्य जातियों के विषय में कहा जाता है कि रात्रि को वह जाड़ों के मारे ठिठुर रहे हैं। अगर किसी ने उनको कम्मल दे दिया तो ओढ़ लिया, फिर जहाँ सबेरा हुआ और धूप निकली, फिर जिसने चाहा एक मिसरी की डली देकर उनसे कम्मल ले लिया। रात हुई अब फिर काँप रहे हैं। फिर दूसरी रात को कम्मल पाया। ओढ़ा और दिन में किसी ने एक ज़रा सी मिसरी की डली का लालच देकर उनसे कम्मल ले लिया। अर्थात् अब उनको उस मिसरी की डली के सामने वह रात का जाड़ा जो अब सामने मौजूद नहीं है, याद नहीं आता। इसी तरह ऐसे लोग भी हैं जो अपने आप को असभ्य नहीं कहते मगर वह उस चीज़ को नहीं मानते जो उनकी आँखों के आगे इस समय मौजूद नहीं, अर्थात् विश्वास नहीं रखते। उस वस्तु का मानना जो उनकी आँखों के आगे मौजूद नहीं है, विश्वास, निश्चय, यक़ीन, faith या इसलाम कहलाता है।

एक बार देवताओं का असुरों के साथ युद्ध हुआ। देवता लोग बल में असुरों से कम थे। उनके गुरू बृहस्पति ने चार्वाक का तत्वज्ञान असुरों को सिखाया। इस तत्वज्ञान के ऐसेही सिद्धांत हैं कि खाओ पियो और चैन करो (eat,

---

१ स्वर्ग की अप्सरा। २ प्रेमासक्त। ३ निराला। ४ पहचाननेवाला।

drink and be merry) और किसी ऐसी वस्तु को जो तुम्हारे सामने न हो मत मानो।

जिस जाति में भलाई, सत् या ईश्वर पर विश्वास, श्रद्धा या इसलाम नहीं है वह जाति विजेता नहीं हो सकती। एक महाशय ने राम से आज यह शिकायत की कि विश्वास ने भारत वर्ष को चौपट कर दिया। वह महाशय विश्वास का अर्थ नहीं जानते हैं जो ऐसा कहते हैं। लो, आज राम विश्वास के बारे में कुछ बोलेगा। अमेरिका का एक सुविख्यात देशभक्त कवि वाल्ट व्हिटमेन जिसका ज़िक्र राम ने कल किया था और जिस के नाम पर आज सैकड़ों बल्कि हज़ारों मनुष्य जिन्होंने उसके आनंदमय वाक्यों को पढ़ा है, उसी तरह जान देने को तैयार हैं, जिस तरह ईसाई लोग हज़रत ईसा पर, मुसलमान लोग मोहम्मद साहब पर और हिंदू लोग भगवान् राम या कृष्ण पर। वह अपनी पुस्तक "तृणपर्ण" (Leaves of grass) में इस तरह लिखता है कि आकाश पर तारे और भूमि पर कण केवल धर्म या विश्वास के लिये चमकते हैं। इस अमेरिकन लेखक का उल्लेख राम इस कारण से करता है कि लोगों का यह ख्याल है कि योरप और अमेरिकावाले सब के सब नास्तिक होते हैं अर्थात् ईश्वर को नहीं मानते। भला यह क्या संभव है कि बिना ईश्वर में विश्वास किये हुए कोई देश उन्नति कर सके ? हाँ, निस्संदेह वह ऐसे ईश्वर को नहीं मानते जो मनुष्यों से अलग, संसार से परे कहीं बादलों के ऊपर बैठा हुआ है। कहीं उसको वहाँ ज़ुकाम न हो जाय। और जिस देश में suspicion (भ्रम व अविश्वास) फैल जाता है अर्थात् जहाँ संदेह घर कर लेता है, उस देश की दशा नष्ट हो जाती है।

इस रोग की शीघ्र दवा करो, नहीं तो यह रोग असाध्य जीर्ण ज्वर हो जायगा। बहादुरी विश्वास वालों के लिये है।

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मर चुका इन्सान के लिये॥

कहाँ अरब की मरुभूमि। वहाँ एक उम्मी—अनपढ़ (हज़रत मुहम्मद से अभिप्राय है) जंगलों के रहने वाले अनाथ के मन में इसलाम (श्रद्धा, faith, विश्वास) की आग भड़क उठी। अर्थात् सिवाय अल्लाह (ईश्वर) के और कुछ नहीं है— "ला इलाहिल अल्लाह" "एकमेवा द्वितीयम् नास्ति"।

इस बात का यक़ीन उसके मन में जम गया। परिणाम यह हुआ कि उसके अंतःकरण में आग भड़की और उस मरुस्थल में पड़ी जहाँ रेत का एक एक कण अग्निप्रसारक बारूद का छर्रा बन गया और सारे संसार में एक हलचल मच गई। ग्रेनाडा से लेकर दिल्ली तक और योरप, अफ़रीक़ा और एशिया के इस सिरे से उस सिरे तक एक आफ़त मचा दी। यह क्या था? श्रद्धा और विश्वास का बल। विश्वास की शक्ति, न कि तलवार और बंदूक़ की शक्ति जैसा कि लोग प्रायः कहा करते हैं कि बंदूक़ और तलवार की शक्ति से इसलाम ने विजय पाई।

जिस समय मोहम्मद ग़ोरी और महमूद ग़ज़नवी भारत वर्ष में आये तो वह लोग बहुत कम थे और हम लोग दल के दल। मगर क्या कारण था कि हमारी हार हुई और उनकी जीत? एक इतिहासज्ञ लिखता है कि जिस प्रकार घटा (आँधी) के आगे खाक उड़ती चली जाती है उसी प्रकार हिन्दुओं के दल के दल मुसल्मानों के सामने उड़ते चले जाते थे। इसका कारण वही यक़ीन या विश्वास था। जब

तक हृदय में यक़ीन न हो हाथ में शक्ति भी नहीं, आती। जब हृदय में विश्वास भरता है तो हाथ और बाहु शक्ति से फड़कने लगते हैं। एक बार का ज़िक्र है कि जब राम बी० ए० की परीक्षा दे रहा था तो परीक्षक ने गणित के पर्चे में १३ प्रश्न देकर ऊपर लिख दिया कि Solve any nine out of the thirteen इन तेरह प्रश्नों में से कोई ६ प्रश्न हल करो। चूँकि राम के हृदय में विश्वास ज़ोर मार रहा था, उसने उसी समय में सब तेरह के तेरह प्रश्न हल करके लिख दिया कि इन तेरह प्रश्नों में से कोई ६ जाँच लो, यद्यपि इन १३ प्रश्नों में से औरों ने कठिनता से ३ या ४ प्रश्न हल किये थे।

जेम्स भी ऐसा कहता है कि विजय या जीत उसी की है जिसको यक़ीन या विश्वास है, और यही रूहानी क़ानून (आत्मिक नियम) है। विश्वास के बारे में बयान करते हुए यह देखना चाहिये कि दो वस्तुएँ होती हैं, एक तो विश्वास और दूसरा मत जिसका अर्थ यक़ीन (Faith-श्रद्धा) और अक़ीदा (Creed-मत) है।

क्रूसेड अर्थात् ईसाइयों के उस जिहाद (धर्म युद्ध) का ज़िक्र राम सुनाता है जिसमें इँगलैंडराज रिचर्ड प्रथम भी सम्मिलित था। जब ईसाई लोग योरुसलम में हारने लगे तो एक बूढ़ा मनुष्य उनमें से यों बोल उठा कि मैंने जिब्राईल को देखा जिसने मुझसे यह कहा कि इसी भूमि के नीचे जहाँ हम लोग लड़ रहे हैं वह भाला दबा हुआ है जिससे हज़रत मसीह छुए गये थे। अगर वह भाला मिल जाय तो हमारी विजय अवश्य होगी। इसको सुनकर लोगों ने उस भूमि को खोदना आरंभ किया मगर कोई भाला न मिला।

खोदते खोदते अंत में एक अत्यन्त जीर्ण भाला भूमि में से निकला। वह लोग उस भाले को ईसावाला भाला जानकर जी तोड़ कर लड़ने लगे और अंत में वह विजयी हुए। मरते समय उस बूढ़े मनुष्य ने पादरी के आगे इस बात का इकार (confession) किया कि मैंने योरुसलम की लड़ाई में भाले वाली कहानी गढ़ दी थी, जिससे विजय हो। चाहे कुछ हो, मगर वह बात उस समय काम कर गई। इस कहानी का वह अंश जिससे लोगों के हृदयों में यक़ीन (निश्चय) बढ़ गया, विश्वास या faith है और कहानी मत (creed) है। विश्वास की शक्ति जीवन है। राम ऊपर के अक़ीदे 'मत' पर ज़ोर नहीं देता, वह तो भीतर की आग आप ही में से निकाला चाहता है।

लोग कहते हैं कि योरप के बड़े बड़े लोग नास्तिक हैं। ब्रैडला और हरबर्ट स्पेंसर यद्यपि ईसाइयों और मुसलमानों या और धर्मवालों के खुदा को न मानते थे, मगर उनमें यक़ीन और विश्वास अवश्य था और उन लोगों के चाल चलन आप लोगों के पंडितों, धार्मिक उपदेशकों और व्याख्याताओं से कहीं श्रेष्ठ थे।

ब्रैडला यद्यपि रामायण नहीं जानता था मगर उसका हृदय प्रेम से भरा था। आप के धार्मिक लोग अपने प्रेम को किसी मत विशेष या देश में ही परिच्छिन्न कर देते हैं, मगर उसका चित्त इँगलस्तान में भी परिच्छिन्न (घिरा हुआ) न था बल्कि भारत के हित में भी अपना रक्त अर्पण कर रहा था। प्रकृति के अटल नियम पर विश्वास रखता था। इसी विश्वास या ईमान की भारतवर्ष को भी आवश्यकता है। यह गाली है कि तुम बे-ईमान हो, अर्थात् तुम्हारा ईमान

नहीं है और ईमान अदृश्य वस्तु पर विश्वास लाने का नाम है, और यह ही धर्म, विश्वास या इसलाम है, और बिना इसके कोई उन्नति नहीं कर सकता। आर्किमेडेज़ यह कहा करता था कि If I get a Point I shall overturn the whole world. अगर मुझको एक मध्य बिंदु (केन्द्र) खड़े होने के लिये मिल जाय तो मैं संपूर्ण संसार को उलट दूंगा।

राम बतलाता है कि वह स्थिर मध्यबिंदु तुम्हारे ही पास है। यदि तुम उस आत्मदेव को जो दूर से दूर और निकट से निकट है जान लो तो वह कौनसी वस्तु है जिसको तुम नहीं कर सकते।

> वह कौन सा-उकदा है जो वार हो नहीं सकता,
> हिम्मत करे इंसान तो क्या हो नहीं सकता।

इस विश्वास को हृदय में स्थान दो और फिर जो चाहो सो करलो। क्योंकि अनंत शक्ति का स्रोत तो तो तुम्हारे भीतर ही मौजूद है।

हक्सले का कथन है कि अगर तुम्हारी यह तर्कशक्ति तार्किकता और बुद्धि व विवेकशक्ति घटनाओं के जानने में सहायता नहीं करते तो—

> बरीं अक्लो दानिश ब बायद गरेस्त।

अर्थात्-इस बुद्धि और विवेक शक्ति पर तो रोना उचित है। ऐसे तर्क को बदल दो, अक्ल को फेक दो, मगर घटनाओं को आप बदल नहीं सकते।

आत्मा अर्थात् भीतर वाली शक्ति पर विश्वास रक्खो। टिटिहरी के मन में विश्वास आगया। उसने साहस की कमर बाँधी। समुद्र से सामना किया और विजय पाई।

* कठिन ग्रंथि, भेद, २ स्पष्ट हो नहीं सकता।

एक कहानी है कि टिटिहरी के अंडे-बच्चे समुद्र बहा लेगया। उसने विचार किया कि समुद्र आज मेरे अंडे बच्चे बहा ले गया तो कल मेरे और सजातियों के बच्चों को बहा ले जायगा। इससे उत्तम है कि समुद्र का विनाश कर दिया जाय। ऐसा सोचकर समुद्र का जल उन पक्षियों ने अपनी चोंचों से भर भर के बाहर फेंकना आरम्भ किया और विपत्ति-काल में अपने उत्साह को भंग नहीं किया।

इतने में एक ऋषि जी वहां आये और चोंचों से समुद्र का पानी खाली करते देखकर कहा कि यह क्या मूर्खता का काम कर रहे हो क्या समुद्र को खाली कर सकते हो? क्या अकेला चना भाड़ को फोड़ सकता है? इस मूर्खता के काम को छोड़ो। इस पर उसे टिटिहरी ने उत्तर दिया कि महाराज! आप देवर्षि होकर मुझको ऐसा नास्तिकपने का उपदेश करते हैं। आप हमारे शरीरों को देख रहे हैं; हमारे आत्मबल को नहीं देखते। (यही उत्तर कागभुसुंड को महाराज दत्तात्रेय जी ने दिया था और कहा-यार, तुम तो कौवे ही रहे। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि सदैव हाड और चाम पर जाती है। शरीर तो मैं नहीं हूँ। मैं तो वह हूं जिसका अंत वेद भी नहीं पा सकते। आत्मदेव तो वह है जो कभी भी ख़त्म होने वाला नहीं है!) इस उत्तर को सुनकर ऋषि जी महाराज होश में आए और समुद्र से क्रोध करके बोले कि अरे इसके अंडे बच्चे क्यों बहा ले गया? इसपर समुद्र ने झट अंडे-बच्चे फेंक दिये। और कहा कि मैं तो मख़ौलबाज़ी (परिहास) करता था।

इस कहानी में अमर और अजर आत्मदेव में यक़ीन का होना तो विश्वास, मज़हब या इसलाम है, बाक़ी सब

कहानी, मत या अक़ीदा है। किंतु राम तो विश्वास ही को उत्तेजना देता है; और बात से उसको सरोकार नहीं।

अकेले फ़रहाद ने नहर को काट कर बादशाह के महलों तक पहुंचा दिया। ये सब घटनाएं हैं। आप उन तसवीरों को देख सकते हैं जो फ़रहाद ने पहाड़ों पर नहर काटते समय बनाई थीं। सिवाय विश्वासवान् पुरुषों के दूसरे का यह काम नहीं। जिसको इस बात का विश्वास है कि मेरे भीतर आत्मा विद्यमान है, तो फिर वह कौन सी ग्रंथि है जो खुल नहीं सकती? फिर कोई शक्ति ऐसी नहीं जो मेरे विरुद्ध हो सके। सूर्य हाथ बाँधे खड़ा है और चंद्रमा प्रणाम के लिये शिर झुका रहा है। ज़रा देखिये, अकेले तो रामचंद्र और उनके साथ एक भाई और सीता जी को समुद्र पार करके वापस लाना चाहते हैं। क्या यह काम सहल है? नाव नहीं, जहाज़ नहीं; मगर वाहरे वीर साहसी! कि जिनकी सेवा करने को वन्य पशु भी उद्यत हैं। बन्दर जैसे चंचल पशु भी आपकी सेवा में उपस्थित हैं। पक्षी भी आपकी सेवा के लिये प्राण-विसर्जन किए देता है। गिलहरियाँ भी चोंच में बालू भर २ कर समुद्र पर पुल बाँधने का प्रयत्न करतीं और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करती हैं। अगर हरेक के हृदय में वही श्रद्धा उत्पन्न होजाय जो राम में थी तो—'क़ुमारियाँ आशिक हैं तेरी सरो बंदा है तेरा' वाली अवस्था सबकी होजाय। अगर इस बात का विश्वास नहीं आता कि "मैं वह ही हूं" तो इस का निश्चय तो होना ही चाहिये कि मेरे भीतर वही है। "जब मेरे भीतर वही है, तो मैं सब का स्वामी हूं और जो चाहूं सो कर सकता हूं"। यह ख़याल बड़ा ज़बरदस्त है और

यह ख़याल हृदय में हर समय रक्खें जिससे वह भीतर की शक्ति प्रकट होने लगती है। अमेरिका और इंगलैंड के बहुतेरे अस्पतालों में सरकारी तौर से ऐसी चिकित्साएं होगई हैं जिसमें केवल विचार की शक्ति से रोगी अच्छा कर दिया जाता है और बहुतों ने इस बात की सौगंध खाई है कि हम आयु भर औषधि-सेवन न करेंगे, और अगर कोई बीमारी होजायगी तो केवल विचार की शक्ति से उसको भगा देंगे। यह शक्ति यक़ीन है, यही विश्वास है।

आजकल की विचार-विद्या ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि मेज़ की जगह आपको घोड़ी दिखलाई दे। क्या आपने इस आख्यायिका, को नहीं सुना कि जेम्स साहब का डाक्टर पाल बन गया। तत्व वही है जो विश्वास की आंखों से दिखाई देता है। यदि देखना है तो उस आत्मा को देखो।

एक पिन्सल की कला को देखो जिससे हज़ारों मनुष्य पल रहे हैं, और राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ रही है। रेल वालों को लाभ, डाकवालों को लाभ। इस कला की हक़ीक़त (वास्तविकता) कहां है ? इसके एक छोटे से chemical action इस विकार या भीतरी विकार पर है जो दिखाई नहीं देता। भीतर से आत्मा बराबर निर्विकार है।

जापान और अमेरिका की उन्नति का रहस्य उनकी बाहर की संपत्ति और वैभव के देखने से नहीं मालूम होता वरन् उन देशों के उदय का कारण उनके भीतर का परिवर्तन है। वह क्या है ? यक़ीन या विश्वास है। सब जातियों और राष्ट्रों की उन्नति का मूल कारण उनकी आत्मा में है, शरीर तो केवल आवरण की तरह है।

तैंतीस करोड़ देव देवताओं को क्या,३३ लाख करोड़ देवताओं को पड़े माना करो, भला जब तक आप में भीतरी शक्ति जोश न मारेगी आपका कुछ भला न होगा। जिस समय आपके भीतर का आत्मबल जागेगा तो सारे देवता भी अपनी सेवा के लिये हाथ जोड़े खड़े पाओगे। अभी तुम उनको मानते हो, फिर वे तुमको मानेंगे।

१ कुतुब अगर जगह से टले तो टल जाए।
हिमाला, २ बाद की ठोकर से भी फिसल जाए॥
अगरचि ३ बहर भी जुगनू की दुम से जल जाए।
और, ४ आफताब भी कब्ले-तुलूअ ५ ढल जाए॥
कभी न साहबे-हिम्मत का हौसला टूटे।
कभी न भूले से अपनी, ६ जबीं पै बल आए॥

इसी का नाम विश्वास, यक़ीन और परमेश्वर में भरोसा रखना है। जिस हृदय में यह विश्वास है, वह बाहरी वस्तुओं की परवाह नहीं करता। वह घर ही क्या जिसमें दीपक न हो, वह ऊंट ही क्या जो बे-नकेल हो और वह दिल ही क्या जिसमें विश्वास न हो।

कोई प्राणी या मनुष्य ही क्या जिसको ईश्वर, सत् (Truth) या हक़ीक़त में विश्वास न हो। जब विपत्ति आती है तो बलिदान की आवश्यकता होती है। हिंदू, मुसलमान, यहूदी, ईसाइयों सब में यह बलिदान की प्रथा प्रचलित है। एक बेचारे पशु (बकरे) को काट डाला या अग्नि में डाल दिया और कह दिया, यह बलिदान है। क्या बलिदान इसी का नाम है ?-नहीं २। सच्चा बलिदान तो यह है:-

कर नित्य करें तुमरी सेवा, रसना तुमरो गुण गावे।

* * * *

बिन लाडेके बरात भला किस काम की॥

१ ध्रुव। २ वायु। ३ समुद्र। ४ सूर्य। ५ उदय काल से पूर्व। ६ ललाट।

प्यारे ! बलिदान तो यह है कि सचमुच परमेश्वर के हो जाँय और उसी सचाई के सामने इन संसार के भोगों और इंद्रियों की कामनाओं Tempations की कुछ असलियत न रहे ।

Take my life and let it be
  Consecrated, Lord, to Thee.
Take my heart and let it be
  Full saturated, Love, with Thee.

Take my eyes and let them be
  Intoxicated, God, with Thee.
Take my hands and let them be
  For ever sweating, Truth, for Thee.

प्राण मेरा प्रभु, स्वीकृत कीजे, निज पद अर्पित होने दीजे,
अन्तःकरण नाथ ले लीजे, निज से उसे प्रेम भर दीजे ।
स्वीकृत कीजे नेत्र हमारे, निजसे मतवाले कर प्यारे,
लीजे सत प्रभु हाथ हमारे, सदा करें श्रम हेतु तुम्हारे ।

(इस कविता में 'प्रभु' शब्द से आकाश में बैठा हुआ मेघ मंडल से परे जाड़े के मारे सिकुड़ने वाला अदृश्य ईश्वर से तात्पर्य नहीं है। प्रभु का अर्थ तो है सर्व अर्थात् समस्त मानव जाति ।)

तुम काम किए जाओ, केवल परमेश्वर के निमित्त। खुदी (अभिमान) और खुदग़र्ज़ी (स्वार्थपरता) ज़रा न रहने पावे। यदि तुम आत्माभिमान को भी परमेश्वर के निमित्त बलिदान कर दो, अर्थात् अहंभाव को मिटा दो फिर तो तुम आप में आप मौजूद हो।

लोग कहते हैं कि ऐसी दशा में हमसे काम नहीं हो सकेंगे। जल-विद्या में एक लैम्प का जिक्र आया है जिसका

आकार इस प्रकार का होता है कि जिसमें जो हिस्सा नीचे रहता है वह तेल से भरा होता है और ऊपर का भाग ठोस होता है। ज्यों ज्यों जलने से तेल खर्च होता जाता है वह ठोस भाग नीचे को गिरता जाता है। अर्थात् तेल की Specific gravity (विशेष गुरुत्व) ठोस के बराबर होती है।

अब इस उदाहरण में तेल को बाहरी कार काज समझो और दूसरे आधे अंश को यक़ीन, विश्वास, इसलाम या श्रद्धा कहो।

लोग कहते हैं कि हमको फ़ुर्सत नहीं। किंतु जान्सन के कथनानुसार समय पर्याप्त है यदि भली भाँति काम में लाया जाय Time also is sufficient if well-employed। यह क्या तुम्हारे हाथ और पैर काम करते हैं?—नहीं नहीं; वरन् तुम्हारे भीतर का आत्मबल यक़ीन और विश्वास है जो तुम्हारे प्रत्येक नस नाड़ी में गति और ताप उत्पन्न कर देता है।

अरे यारो! आत्मदेव को, जो अकाल-मूर्ति है, उसको काल अर्थात् समय से बाँधा चाहते हो, इसीका नाम नास्तिकता, कुफ़्र या Atheism है। हक्सले नास्तिक नहीं है जैसा तुम समझे हुए हो। वह कहता है कि मैं ऐसे परमेश्वर को मानता हूं जिसे स्पीनोज़ा ने माना है और बिना सच्चे और भीतर वाले परमेश्वर पर विश्वास लाए हम एक क्षण मात्र भी जीवित नहीं रह सकते।

चूं कुफ़्र अज काबा बर खेजद कुजा मानद मुसलमानी।

अर्थात्—यदि स्वयं काबे से ही कुफ़्र, नास्तिकता, अविश्वास उत्पन्न हो तो फिर इसलाम का कहाँ ठिकाना लगे।

परमेश्वर तो आपके भीतर है जो सर्वत्र विद्यमान और

सर्व द्रष्टा है। यदि प्रह्लाद के हृदय में यह विश्वास होता कि ईश्वर कहीं आकाश पर बैठा हुआ है तो उसकी जिह्वा से कभी ये शब्द न निकलते—

मो में राम, तोमें राम, खड्ग खंभ में व्यापक राम,
जहँ देखो तहँ राम हि राम।

'राम तो कहता है कि हाथ कार (कार्य) में और दिल (हृदय) यार में हो। हाथों से हो काम और दिल में हो राम। ऐसे ही पुरुष जब कृष्ण भगवान् के मंदिर में जाते हैं तो अपनी आँखों से आबदार मोती (अश्रु-बिंदु) उस मनोहर मूर्ति पर न्योछावर किए बिना नहीं रह सकते, और यदि मसजिद में जा खड़े होते हैं तो संसार से हाथ धोकर ('वज़ू' करके) नमाज़ मस्ताना (प्रेमोन्मत्त प्रार्थना-भक्तिविह्वल स्तुति) पढ़ने लगते हैं, और यदि वे गिरजे में प्रवेश करते हैं तो पवित्रात्मा के सामने देहभाव को सलीब (सूली) पर चढ़ा देते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

पत्रमञ्जूषा।

वसिष्ठाश्रम।

जून का अन्त १९०६।

(राय बहादुर लाला बैजनाथ को भेजे हुए एक पत्र की नकल।)

व्यास पर्वत के शिखर के पास की सब गुफाएँ वार्षिक अतिथियों अर्थात् ऋतु की वर्षा से सताई जाती हैं, इस लिये राम को चोटी पर के नन्दन वन को छोड़ना पड़ा। वह एक परम सुहावन उच्च समचौरस पर उतर कर आ गया है. जहां सर्वदा जल तरंगों से स्पर्श करती हुई वायु बहा करती है। सुफेद और पीली चमेली अन्य पुष्पों के साथ यहां पर बहुत हैं। बेर मकोइया, किरमीनी और अन्य प्रकार के बहुत से जंगली मेवे यहां बहुत पके हुए मिलते हैं। नई बनी हुई राम की पर्णकुटि के एक ओर एक स्वच्छ हरा मैदान, बहती हुई दो नदियों के मध्य में रमणीय भू प्रदेश बहुत दूर तक फैला हुआ है। दूसरी ओर सुहावना मैदान बहता हुआ पानी, नवपल्लव से ढकी हुई पहाड़ी और लहराते हुए खेत और जंगल हैं। स्वच्छ, विस्तीर्ण शिलापट राम बादशाह के मेज और सिंहासन हैं। यदि छाया की आवश्यकता हो, तो राम का स्वागत करने के लिये अनेक लताकुंज सर्वत्र तैय्यार है।

इस अरण्य में यहां के रहनेवाले गड़रियों ने तीन घंटे में पर्णकुटि तैय्यार की। उन्हों ने अपनी शक्ति के अनुसार उसे पानी का बचाव बना दिया है। रात को वर्षा का तुफान आया। प्रत्येक दो या तीन मिनट में बिजली चमकने लगी और बादल की गड़गड़ाहट होती रही जिससे पर्वत मानो

हिलने और कांपने लगे। यह इन्द्र का सुप्रसिद्ध पवि लगातार तीन घंटों तक अपनी गर्जना करता रहा। वर्षा बड़े जोर से होने लगी। बेचारी पर्णकुटि चूने लगी। आंधी से उसका बचाव करना इतना असंभवित हो गया कि छत के अन्दर पुस्तकों को भीगने से बचाने के लिये सब समय तक एक छाता खोल कर रखना पड़ा। वस्त्र सब पाणी से तर हो गये। घास से ढकी रहने के कारण जमीन में कीचड़ न होने पाया। फिर भी छत से धीरे २ गिरते हुए जल-बिन्दुओं की भेट वर्षा करती रही थी। राम उस समय मत्स्य और कच्छप जीवन (अवतार) के अनेक अंशों का आनन्द ले रहा था। रात्रिभर जलशायी जीवन का यह अनुभव अपूर्व आनन्द देता रहा। उस प्रेममय प्यारे के चिन्तवन में रात्रि व्यतीत करानेवाले ये बादल अवश्य धन्यवाद के योग्य हैं।

"शौह जागे हौं काहनु सोवा" ग्रन्थ साहब।

अर्थः—प्रियतम जागता हो तब मैं कैसे सो जाऊं?

ज़ उमर यक शब कम गिरद् जिनहार मख़सफ।

अर्थः—अपने जीवन में एक रात्रि कम समझ और अब कभी मत सो।

"मेरा कैसे निर्वाह होगा? मेरा अब क्या होगा?" और इस प्रकार की नानाविधि तुच्छ और मूर्ख बातों की फिक्र करने के लिये मनुष्य ने जन्म नहीं लिया है। उसको कम से कम इतना स्वाभिमान होना चाहिये, जितना मत्स्य, पक्षी और वृक्षों में होता है। वे आंधी और सूर्यताप से घबड़ाते नहीं परन्तु प्रकृति के साथ एक होकर रहते हैं। मैं स्वतः गिरती हुई वर्षा का जल हूं, मैं चमकता हूं, मैं गर्जता हूं, मैं कितना विकराल और शक्तिमान् हूं। मेरे अन्तःकरण से

"शिवोऽहम्" का स्तोत्र एकदम निकल पड़ता है।

'अब मीख्वाहन्द मस्तां खाना गो वीरां शवद्।'

अर्थात् मकान चाहे गिर कर मैदान बन जाय, मगर मस्त पुरुषों बादल की परवाह नहीं करते।

चार तरफ से [1]अब्र कि वाह उठी थी क्या घटा,
बिजली की जगमगाहटें [2]राअद रहा था गडगडा।
बर्से था मेंह भी झुम झुम छाजों [3]उमंड उमंड पडा,
झोकें हवा के के चले होशे-[4]बदन को वह उडा।
हर रगो-[5]ओंमें जोर था [6]नगमा था जोर शोर का,
अब्रेबरों से था सिवा दिल में [7]सरूर बरसता।
आबे [8]हयात की झडी जोर जो रोजो [9]शब पडी,
फिक्रो-ख्याल बह गये टूटी [10]दूई की झोंपडी।
जंगल सब अपने तन पर हरयाली सज रहे हैं,
गुल फुल झाड बूटे कर अपने धज रहे हैं।
बिजली चमक रही है बादल गरज रहे हैं,
अल्लाह के नकारे नौबत के बज रहे हैं।
महेचन त्वाद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥
(ऋग्वेद अ० ५ अ० ७। ११ मं० ५)

अर्थात्ः—हे पर्वत को हिलाने वाले इन्द्र! मैं तुझे न तो किसी भी मूल्य से और न हजारों (सुवर्ण मुद्राओं) के लिये भी त्याग सकता हूं। हे इन्द्र! हे असंख्य उदारता के परमेश्वर! मैं तुझे न तो दस हजार के लिये और न सैकड़ों हजार के लिये त्याग सकता हूं।

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
अतस्त्वा गोभिर्धुगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ अविवासति॥

---

[1] बादल। [2] बिजली की गर्जना। [3] अर्थात् बड़े जोर से वर्षा हुई। [4] देहभान। [5] प्रत्येक प्राण में। [6] ध्वनि। [7] आनन्द। [8] जीवनामृत। [9] दिन रात। [10] द्वैत।

इस ऋचा का सायणाचार्य आदि ने चाहे जैसा अर्थ किंवा विनियोग किया हो परन्तु राम को यह ऋचा यही बतलाती है।

भावार्थः—हे शक्र! चाहे तू दूर द्युलोक (गड़गड़ाता मेघमंडल) में हो, हे वृत्रहन् (शंका संहारक) चाहे तू (बहते हुए वायु के रूप में) समीप अन्तरिक्ष में हो, [तेरे बैठने के लिये] गगनभेदी गान [हृदय भेदक प्रार्थना] के रूप में लम्बी अयाल वाले अश्व भेजे जाते हैं। और उसके पास शीघ्र ही आते हैं जिसने [तेरे लिये अपने जीवन का] रस निचोड़ लिया है। हे सोम! आओ, मेरे अन्तः करण में बैठो और मेरे जीवन के सोमरस का कुछ आनन्द प्राशन करो।

दर्द क्यों न मेरे अँधेरे हिय में? [सूरदास]

अर्थात् मेरे अंधकारमय हृदय में वेदना क्यों नहीं होती?

परमात्मदृष्टि से जब इस जगत् को देखते हैं, तब यह समस्त संसार सौन्दर्य का मन्दिर, आनन्द का आविर्भाव और परमसुख का महासागर प्रतीत होता है। जब माया की मर्यादा पर विजय होजाता है, कोई भी वस्तु विरूप-कुरूप दिखाई ही नहीं देती। "सारा जग सोहना" प्रकृति की शक्तियां वास्तव में हमारे हाथ पैर और अन्य इन्द्रियां बन जाती हैं।

जैसे आत्मा आनन्द और सर्वस्व है, वैसेही आत्मसाक्षात्कार का अर्थ अन्तःकरण का यह विश्वास है कि अपनी आत्मा ही यह समस्त रूपों में भासमान् होने लगे।

यह अखिल विश्व मेरी आत्मा का ही स्वरूप है इस लिये मूर्तिमान् माधुर्य है। ऐसी अवस्था में मैं किसको दोष दूं? मैं किसके छिद्र देखूं? हे आनन्द! सब कुछ मैं ही हूं। ॐ।

कैसे रंग लागे खूब भाग जागे, हरी गई सब भूख और नंग मेरी।
चूड़े सांच सरूप के चढे हमको, टूट पड़ी जब कांच की वंग मेरी।
तारों संग आकाश में चमकती है, बिन डोर अब उडी पतंग मेरी।
झड़ी नूर की बरसने लगी जोरों, चन्द सूर है एक तरंग मेरी।

पराजय और विजय के विषय में वेद में आत्मिक नियम की कैसी मार्मिकता के साथ व्याख्या है:—

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद।
(बृहदारण्यकोपनिषद् अ० २—४ ।६)

भावार्थः-आत्मा से अतिरिक्त जो अन्य किसी में ब्राह्मण को देखता है, उसको ब्राह्मण छोड़ देते हैं।

किसी भी मनुष्य के अपने अन्तःकरण के सातवें पर्दे में किसी भी पदार्थ पर (उसको सत्य समझ कर) विश्वास करते ही वह वस्तु अवश्यमेव उसे त्याग देगी, या विश्वास घात करेगी। यह नियम गुरुत्वाकर्षण के नियम की अपेक्षा अधिक कठोर है। एक केवल वास्तविक सत्य आत्मा ही, हमारी सब वस्तुओं को सत्य समझने की माया का नाश करके सत्य को दिखाता है।

क्या आश्चर्य! कदापि न ज्ञानी घट भीतर छिप सकता है,
रवि सम सब के ऊपर जीत कर किला, दीवार चमकता है।
गगन मार्ग से सूरज जैसे मेघों को ही बरसता है,
उनके हटते ही सारे दिन सुख से फिर वह तपता है।

जब तक मनुष्य के अन्तःकरण में किसी प्रकार की वासना का किञ्चित् मात्र भी अंश होगा, "शिवोऽहम्" या परमानन्द की स्थिति का अनुभव करना कभी संभवित नहीं हो सकता किन्तु,

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ (कठोपनिषत् अ० २।१४)

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!